Visit **Dwarkadheeshvastu.com** For

FREE **Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos**
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

****

All Music is also available in **CD** format. **CD Cover** can also be print with your Firm Name

****

We also provide this whole Music and Data in **PENDRIVE** and **EXTERNAL HARD DISK.**

Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

Krishnayan

Radheyshyam

❀ ॐ ❀

॥ मंगलाचरण ॥

जयति गजानन, गजबदन, गिरजासुवन, गणेश ।
जय शशिधर, जय वेणुधर, जय गुणवर हृदयेश ॥
वर दे, वर दे शारदे, करदे बुद्धि-[illegible] ।
बल दे ऐसा हृदय में, हो यह सुफल प्रयास ॥

—०:: ❀ ::०—

श्रीकृष्णचन्द्र, मुकुन्द आनन्दकन्द द्वन्द-विमोचनम् ।
करुणाकरं कमलापति कंजारुणयतलोचनम् ॥
कालिन्दिकूलकदम्बतरुतल-----वेणुवादनतत्परम् ।
बलदायिनं वरदायिनं जयदायिनं राधावरम् ॥
सद्धर्मध्वंसकदैत्यककंसनृशंस------दर्पविभंजनम् ।
भयभंजनं खलगंजनं सुरसिद्धमुनिमनरंजनम् ॥
प्रणमामि शोभाधाम-श्यामललामकुंजविहारिणम् ।
रुजहारिणं सुखकारिणं गोपालगिरिवरधारिणम् ॥

—:: ❀ ::—

ॐ

जन्माष्टमी

प्रस्तावना

—०:: ❀ ::०—

गणपति की कर वन्दना, गुरुजन का कर ध्यान।
करता हूँ गोविन्द के—विमल चरित का गान॥
आर्य्य जगत् में है विदित हरिद्वार शुभ धाम।
किया जाह्नवी ने जहाँ—प्रथम बार विश्राम॥
व्यास पुत्र शुक ने वहीं, नृपति परीक्षित हेतु।
बाँधा—श्रीमद्भागवत् का—भवतारण सेतु॥
नव स्कन्ध तक कह चुके—मुनिवर कथा पवित्र।
तब बोले—राजन् सुनो, अब श्रीकृष्ण—चरित्र॥

पृथ्वी पर जब बढ़ गया—ज्यादा अत्याचार !
पृथ्वीपति ने तब लिया—षोडसकलावतार ॥

तुम पूछोगे यह कला है क्या ? इसका भी तत्व बताता हूँ ।
यह सूक्ष्म जगत् का है रहस्य जो आज तुम्हें समझाता हूँ ॥
इस ढंग से शीघ्र समझलोगे–अवतार कौन कहलाता है ।
वह सर्वव्यापक किस प्रकार–मानव चोले में आता है ॥

अचर–सचर की सृष्टि ही है यह सब संसार ।
जिसमें हरि की कला का रहता है विस्तार ॥

वृक्षों में एक कला रहती, दो रहती कीट आदिकों में ।
पक्षीमण्डल में तीन कला, हैं चार कला चौपाओं में ॥
फिर पाँच से लेकर आठ कला–मानवदल में दिखलाती हैं ।
जो आठ के ऊपर होती हैं, 'अवतार' वही कहलाती हैं ॥
मर्य्यादा पुरुषोत्तम रघुवर, जो दशरथ–अजरबिहारी थे ।
तुम स्वयं जानते हो उनको–वे बारह कलावतारी थे ॥
उनके अतिरिक्त हुए जितने वे सब अवतार अधूरे थे ।
पर, अपने यह श्रीकृष्णचन्द्र–सोलहों कला से पूरे थे ॥"

द्वापरयुग के अन्त की कहते हैं हम बात ।
भारत में हो रहा था असुरों का उत्पात ॥

हिमगिर से लेकर सागर तक, था अस्तव्यस्थ देश सारा।
मानो भारत में आन बसा, दुनिया का दुःख क्लेश सारा॥
छोटे-छोटे राजाओं में हर समय युद्ध हो जाता था।
आपुस के इतने झगड़े थे—भाई-भाई को खाता था॥
प्रकटे थे मूर्तिमान् पापी—पापों की घोर अँधेरी में।
इस ओर मगध में 'जरासन्ध' 'शिशुपाल' उधर चन्देरी में॥
गंगा-यमुना का दिव्य देश आरत हो—होकर रोता था।
ब्रजमण्डल से सुरमण्लड तक जब जुल्म कंस का होता था॥

धर्म स्थापन का उठे जिक्र किसी भी ठाँव।
जलवा देते थे तभी गाँव के गाँव॥

ब्राह्मण मण्डल की वाणी पर हर समय नोक थी बाणों की।
बलिदानों का वह ताँता था कुछ रही न कीमत प्राणों की॥
वेद—ध्वनिवाली वेदी पर तलवार नृत्य दिखलाती थी।
रक्तों से सन्त साधुओं के—यों होली खेली जाती थी॥
माताओं और बहिनों की हालत—सचमुच बयान से बाहर थी।
जो शक्ति जगत् की जननी है, वह जूती से भी बदतर थी॥
आखिर इन अत्याचारों से यकबयक काँप भूगोल उठा।
जब प्रकट जगत् में आग लगी तब गुप्त जगत् भी डोल उठा॥

सूक्ष्म शक्तियों में हुआ—ज्यों ही हाहाकार।
क्षीरसिन्धु पर देवता—करने लगे पुकार॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

सर्वेश, सर्व सुधार को, अवतार लो, अवतार लो।
आओ जगत्—उद्धार को अवतार लो, अवतार लो॥
डगमग है नाव—उबार लो, कर्तार, तुम पतवार लो।
अब तार लो संसार को, अवतार लो, अवतार लो॥
सर्वत्र स्वार्थ, अनीति है, न है धर्म, कर्म न प्रीति है।
भूले हैं सब—भर्तार को अवतार लो, अवतार लो॥
'बढ़ता है अत्याचार जब होता हूँ मैं साकार तब'।
भूलो न इस इकरार को, अवतार लो, अवतार लो॥
सब ओर शान्ति—प्रसार हो, सर्वत्र सद्व्यवहार हो।
फैलाओ ऐसे प्यार को, अवतार लो, अवतार लो॥"

—०:: ❀ ::—

करुणा—ध्वनि छाई जभी नभ के चारों ओर।
उठी क्षीर के सिन्धु में करुणामई हिलोर॥

मायापति, जगपति, त्रिभुवनपति, सुरपति लक्ष्मीपति जाग उठा।
डोली जिस समय शेष शय्या, तब वह पृथ्वीपति जाग उठा॥

दुखियाओं का करुणाक्रन्दन, सचमुच प्रभाव दिखलाता है।
नर क्या है, नारायण तक का सिंहासन हिल जाता है॥

"भक्तों, अब होगा नहीं तुमको किंचित क्लेश।"
सबने हृदयों में सुना—यह सुन्दर सन्देश॥

'अवतीर्ण जगत्पति होगा अब उद्धार जगत् का करने को।
पृथ्वीपति स्वयं आ रहा है, पृथ्वी की पीड़ा हरने को॥
संगठित आँसुओं की बूँदें, जो टपक रही हैं भूतल पर।
आयेगी बनकर प्रलयकाल—अत्याचारी राक्षसदल पर॥

'शेष' कभी जो 'लषण' थे होंगे अब बलराम।
मैं ब्रज में आ रहा हूँ बन करके 'घनश्याम'॥

गोलोक वासिनी—महाशक्ति—वृषभानु लली कहलाएगी।
रामावतार की वैदेही—राधिका नाम से आएगी॥
तुम सब भी यादव गोप बनो, जो पहुँचो पहले उस मग में।
खेलेगा प्रकृति खिलाड़ी यह—टोली के साथ खेल जग में॥"

इस सन्देश ने डाल दी मृतक जनों में जान।
नाच उठे नारद तभी ली वीणा में तान॥

❀ गाना ❀

भाग्य फिर सोते हुए भारत का जग जाने को है।
फिर इसी की गोद में वह विश्वपति आने को है॥
जिनके उत्तर में हिमालय और दक्षिण में है सिन्धु।
शक्ति दुनिया के लिए वह देश दिखलाने को है॥
फैलता है सूर्य से रवि-तेज हे रजनीचरो।
अब तुम्हें मारग न अत्याचार फैलाने को है॥
चल चुकी आँधी बहुत उत्पात की और त्रास की।
मेंह अब आनन्द का गोविन्द बरसाने को है॥
जिस अमर-दल ने अवध में दी बधाई-'राधेश्याम'।
वही स्वागत गान फिर ब्रजधाम में गाने को है॥"

—०:: ❀ ::०—

इतना कह ठहरे जरा-मुनिवर दीनदयाल।
कुछ क्षण के उपरान्त फिर बोले-"सुनो नृपाल!
कहता हूँ विस्तार से अब वह चरित उदार।
है जो प्राणीमात्र का अभिमत फल-दातार॥"

❋ इति प्रस्तावना ❋

—०:: ❀ ::०—

ॐ

जन्माष्टमी

कथा प्रारम्भ

"श्रीवर ! 'गुरुवर' ! 'इष्टवर' ! दो ऐसा वरदान ।
राधावर की कथा का घर-घर गूँजे गान ॥
हठवश कूदे आज हम चरित-समुद्र, संहार ।
जिस प्रभु का चरित है, वही करेगा पार ॥
मथुरापुरी प्रसिद्ध है-यमुनाजी के तीर ।
उग्रसेन-नृप थे वहाँ--वयोवृद्ध गम्भीर ॥
कंस उन्हीं का पुत्र था-देश विदित युवराज ।
वही लड़ैता राज्य का करता था सब काज ॥

यदुकुल वह अति पवित्र अंश इतना नृशंस अनुदार हुआ ।
पृथ्वी पर जन्मा आकर उस पृथ्वी का ही भार हुआ ॥
बच्चों को सत्-शिक्षा देना, उनकी उन्नति का कारण है ।
हद से ज्यादा बेजा दुलार, बरबादी का ही लक्षण है ॥

उग्रसेन के एक थे-देवक नामक भ्रात ।
सुता उन्हीं की देवकी है घर-घर विख्यात ॥
जिस दिन श्रीवसुदेव से उनका हुआ विवाह ।
बढ़ा सभी के हृदय में अति अपार उत्साह ॥

विदा हुई रथ पर चढ़े दम्पतिवर सानन्द।
पहुँचाने कुछ दूर तक चला कंस मतिमन्द॥

कहने को यह है नभवाणी–उसके कानों में आई थी।
या किसी ज्योतिषी ने आकर उसको यह बात बताई थी॥
जो भी हो–प्रकृति सूचना का यह तार तुरन्त झनकार उठा।
ध्वनि हुई कंस की आत्मा में, उसका यों हृदय पुकार उठा–

'अरे कंस इस देवकी का अष्टम लाल।
हम बतलाते हैं तुझे होगा तेरा काल'॥
इस ख्याल से पाप का डोल गया जब ढोल।
दुर्बलता ने तब दिया रथ पर धावा बोल॥
खींचा रथ से बहिन को केश पकड़ तत्काल।
आया खड्ग निगाल कर छाती पर चाण्डाल॥

वह अबला, वह नव विबाहिता होकर भौंचक्की काँप उठी।
भारत की नारी जब काँपी तो माता पृथ्वी काँप उठी॥
"क्या है !" इस चिल्लाहट से जब गर्माया मुखमण्डल सारा।
तन–'भाई ! भाई !!' इस जल से भीगा-सुहाग अंचल सारा॥

कूद पड़ा रथ से तभी उस अबला का नाथ।
खड्गधार पर धर दिया–अपना दायाँ हाथ॥

फिर कहा–"हुआ क्या आज तुम्हें, जो यों आपे से बाहर हो ?
भगिनी पर खड्ग चलाते हो तुम वीर नहीं हो कायर हो॥
कोई भी देख नहीं सकता इस तरह दुर्दशा दुलहिन की।
यह तो विवाह-मण्डप पर ही बनती है चिता सुहागिन की।"

'नहीं देख सकते अगर तो आँखें लो फोड़।
इतना कहकर कंस से खड्ग उधर दी मोड़!'

फिर गरजा-"तुम हिमायती हो तो तुम भी यमपुर को जाओ।
नारियाँ सती होती नर पर, तुम सता नारि पर हो जाओ॥
बच नहीं सकोगे तुम दोनों, अब मेरे 'कोप-दुलारे' से।
अर्थियाँ उठेंगी साथ-साथ दो-दो इस राजद्वारे से॥"

झपटा वह वसुदेव पर-करदूं काम तमाम?
त्योंही उठकर देवकी-आगे गिरी धड़ाम॥

कैसी वेदी? कैसा सिन्दूर? शृंगार कहाँ का? साज कहाँ।
पतिदेव के जब प्राणों पर हो तो फिर पत्नी को लाज कहाँ॥
बोली-"उनका संहार न कर, दासी का शीश काट पहले।
ओ खड्ग बहुत भूखी है तू तो मेरा रक्त चाट पहले॥
पत्नी वह ही बड़भागिनी है-जो पति के आगे मरती है।
सम्पूर्ण शास्त्र यह-कहते हैं, वह भवसागर से तरती है॥

बोल पड़े वसुदेवजी, बात-चीत को काट-
"प्रिय, तुम्हारे यह वचन हृदय रहे हैं चाट॥

मर जाने दो मुझको ही तुम, पहले मेरी ही मृत्यु सही।
क्षत्री की मृत्यु नहीं मरता तो कायर की ही मृत्यु सही॥"
फिर कहा कंस से-"कारण तो समझाओ इन बलिदानों का।
सम्बन्ध बाँधकर बहा रहे, क्यों रक्त हमारे प्रानों का॥
तुमको है शपथ देवकी की तुमको सौगन्ध हमारी है।
बतलादो-तुमने रस में यह विष की बात विचारी है?"

इन शब्दों से जब जरा ठण्डा हुआ उबाल।
तब बोला कुछ नम्र हो उग्रसेन का लाल॥

"कह रहा है मुझसे यों कोई गाँठ है मेरी फाँसी की।
खालेगी मेरे प्राणों को अष्टम सन्तान देवकी की॥
इसलिए मिटादूँ जड़ को ही, यह ही अब मुझको जँचता है।
फोड़े को पकने से पहले कर देना नष्ट चतुरता है॥

जभी चतुर वसुदेव ने समझ लिया सब भेद।
बोले-"तब तो व्यर्थ तुम बढ़ा रहे हो खेद॥

आठवें पुत्र का भय है तो वह आगे आपके धरदेंगे।
आठवाँ नहीं, चाहोगे तो, आठों ही अर्पण करदेंगे॥
कह उठा हृदय भी यह-सहलेंगे सब जो सहना है।
आठवें गर्भ के ही खातिर हमको भी जिन्दा रहना है॥"

असुरराज कहने लगा-"तब तो है स्वीकार।
किन्तु भोगना पड़ेगा तब तक कारागार॥

जिन हाथों में कंगना बाँधा, हथकड़ियाँ वहाँ पड़ेंगी अब।
जो पाँव रँगे हैं मेंहदी से बेड़ियाँ उन्हें जकड़ेंगी अब॥
आज्ञा पाते ही वही हुआ, जो क्रूर कंस की इच्छा थी।
दम्पति के जीवन अभिनय की यह पहली करुण यवनिका थी॥

मथुरा में-उस दिवस से व्यापा हाहाकार।
कर न सकी जनता सहन इतना अत्याचार॥

प्रतिवाद सभायें शुरू हुईं, ब्रज भर में आवाजें पहुँचीं।
युवराज के अत्याचारों की राजा पर फरियादें पहुँची॥

उन सबका यह परिणाम हुआ जालिम के जुल्म दुचन्द हुए।
कितने ही जनता के प्यारे कारागृह में बन्द हुए॥

उग्रसेन का भी नहीं, उसने किया खयाल।
दिया उन्हें भी दुष्ट ने कारागृह में डाल॥
राजमुकुट शिर धारकर खुद ही बना नरेश।
जग में घोषित कर दिया—कंस हुए मथुरेश॥

कारागृह के दर्वाजे पर जब राक्षस का पहरा बैठा।
छाती पर बूढ़े राजा की उस समय एक मुक्का बैठा॥
सोचा—"क्या मैंने इस दिन को बेटे पर लाड़ लड़ाया था।
मकड़ी ने अपने फँसने को क्या यह जाला फैलाया था?
बेटे के मुख पर बाप सदा दीवाना—सा हो जाता है?
उसको सुख देने की खातिर खुद लाखों दुःख उठाता है॥
पर, बेटा वही बड़ा होकर बर्ताव ये कैसा करता है।
इसका प्रमाण दुनिया देखे, इन हथकड़ियों में रहता है॥
धिक्कार राज्य से जीवन पर, जो ज्ञान—ध्यान सब खोता है।
अपने ही बेटे के हाथों बूढ़ा नृप बन्दी होता है॥
नालायक बेटे के बदले वह अच्छा जो कि निपूता है।
जगवालों! बूढ़ा उग्रसेन, ऐसी ही उग्र प्रकृति का है॥
अच्छा ओ राक्षस ओ पापी, आराम न तू भी पायेगा।
मेरे शरीर के सड़े माँस, तू सदा घृणित कहलायेगा॥
मैं कहता अब मैं कहता हूँ, बदला यह प्रकृति चुकायेगी।
अष्टम सन्तान देवकी की तेरा अस्तित्व मिटायेगी॥"
यह कहते—कहते आपे में—जब नहीं रहा अपने राजा—
तो माला हाथों में लेकर हरिनाम लगा जपने राजा।

दिन-पर दिन हो रहा था उधर कंस विकराल।
इधर देवकी के हुआ पैदा पहला लाल॥

वसुदेव बोल उट्ठे-"देवी, लाओ यह ऋण भुगता आऊँ।
बेखिला तुम्हारा नया कुसुम, उस ज्वाला में झुलसा आऊँ॥
जितने भी बाप जगत में हैं, बेटे पर बल-बल जाते हैं।
हम वह हैं जो अपने हाथों, अपने का खून बहाते हैं॥"

माता की छातियों में उट्ठा एक उबाल।
बोली-"सचमुच छिनेगा क्या मेरा यह लाल?

लेजाओ-पर ठहरो इतना कहदो क्या यह मनुष्यता है?
पक्षियों और पशुओं में भी होती बच्चे की ममता है॥
आने वाला युग देखेगा-भीरुता हमारे हृदयों की।
अपने जीने को देते हैं आहुती अपने बच्चों की॥

सचमुच पागल की तरह-रो उट्ठा वह बाप।
फिर बोले-"है भीरुता या है पिछला पाप॥

हम कब कहते हैं, हैं मनुष्य, हम तो पशुओं से बदतर हैं।
आँखों से सब कुछ देख रहे, पर बोल न सकते पत्थर हैं॥
पृथ्वी! तुमको हो गया है क्या, क्यों नहीं रसातल को जाती।
सूरज की ज्वालमूर्ति, तू भी नीचे क्यों नहीं उतर आती॥
विन्ध्याचल और हिमालय तुम! आपुस में दोनों टकराओ।
सागर! अब देर नहीं अच्छी बनकर के प्रलयकाल छाओ॥
देवकी! देवकी!! आर्य्य लोग वचनों को नहीं बदलते हैं।
क्षत्री जब प्रण कर लेते हैं तो कभी न प्रण से टलते हैं॥

फिर यह भी जान रहे हैं हम, तप खाली नहीं हमारा है।
आठवें पुत्र ही के कारण, हमने शरीर यह धारा है॥"

यह कहकर चल दिये वह, पुत्र सहित तत्काल।
माँ चिल्लाती रही, "हा बेटा ! हा लाल !!
देखा ज्यों ही कंस ने, बालक का प्रिय रूप।
हृदय द्रवित कुछ हो गया, अब अवलोक अनूप॥
शायद, देता छोड़ वह, यह-नन्हें से प्राण।
दिल उसके भी पास था, था चाहे पाषाण॥
पर नारद ने आनकर, बदला तुरत विचार।
ढीला हुआ न इस तरह, उस सितार का तार॥

पृथ्वी पर रेखायें खींचीं, फिर कहा-"मुझे समझाओ तो ?
इसमें पहली है रेख कौन, अष्टम है कौन बताओ तो ?
उस गोल दायरे को निहार, राक्षस बोला-"यह तो सम है।
जितनी भी हैं, सब पहली हैं, जितनी भी हैं सब अष्टम हैं॥'
नारद तब बोल उठे-योंही बच्चों का क्रम हो सकता है।
अष्टम पहला हो सकता है, पहला अष्टम हो सकता है॥"
जँच गई खोपड़ी में जब यह, तब कहाँ ताब थी क्रोधी में ?
माता की गोदी का बच्चा, पटका पृथ्वी की गोदी में॥

कारागृह पहुँचा पिता, लिए हुए यह खेद।
नारद ने आकर वहीं, समुझाया सब भेद॥

बोले-"तपसीवर, धैर्य धरो, है यह भी समय परीक्षा का।
परिणाम शीघ्र ही देखोगे, तुम अपनी महा तपस्या का।

हे दम्पति, तुम बड़भागी हो, भगवान् तुम्हारे आएँगे।
कहलाकर पुत्र तुम्हारे वे, दुनियाँ का कष्ट मिटाएँगे॥
नभवाणी की अघटित घटना—कवियों की नहीं कल्पना है।
दुनिया के शहंशाह की वह, राक्षस को खुली सूचना है॥
मतलब यह है मैं आता हूँ, अब भी तू सावधान होजा।
अवसर देता हूँ—आँख खोल, सद्वादी धर्मवान होजा॥
वसुदेव, सुन रहे हो मेरी ?, मैं अपनी तुम्हें सुनाता हूँ।
बतलाऊँ ? हिंसाकारी से, क्यों हिंसा और कराता हूँ॥
इच्छा यह है उस पापी का, अति शीघ्र पाप-घट भरजाए।
जिससे गोलोक निवासी वह, भूतल पर तुरन्त उतर आए॥
इन नयनों में अभिलाषा है—प्यारे को यहाँ निरखने की।
यमुना तट, किसी कदम्ब तले, जी भरकर दर्शन करने की॥

चुप न रह सकी देवकी, बोल उठी तत्काल—
"आयेंगे क्यों आठवें ही, बनकर वह लाल ?"
नारद बोले—"आपको, है लालसा प्रशस्य।
अच्छा, करता हूँ प्रकट, यह भी गुप्त रहस्य॥

जब सात गर्भ तक राक्षस के, उत्पात बहुत बढ़ जाएँगे।
सातों लोकों के प्राणी जब, व्याकुल होकर चिल्लाएँगे॥
तब नहीं रुकेंगे किसी जगह—आठवें लोक के स्वामी वे।
अन्तर्पट हटा' प्रकट होंगे, घट घट के अन्तर्यामी वे॥'

इन वचनों से जब, बँधी दम्पतिवर को धीर।
नारायण कह, चल दिये, तब ऋषिवर गम्भीर॥

पहुँचाया–वसुदेव ने, जिस दिन पहला लाल।
उस दिन से कुछ कंस ने, इनका किया खयाल॥

कारागृह से यह मुक्त हुए, बर्ताव न इन पर बुरा रहा।
'सन्तानें भेंट करें जाकर, बस इतना बन्धन बँधा रहा॥
यह गलत है–पापी का जीवन, हर वक्त पाप में जाता है।
तामसी जीव भी कभी-कभी, सात्विकी जगत् में आता है॥
लेकिन सात्विकी जगत् में वह, रह अष्ट प्रहर नहीं सकता।
जिस तरह कि सात्विक जगवाला,तामस में ठहर नहीं सकता॥
यह सात्विक में, वह तामस में, जा-जाकर रहता क्षणभर है।
दुर्जन-सज्जन के जीवन में, बस इतना ही तो अन्तर है॥

एक-एक करके हुईं, छै सन्तान समाप्त।
तब आये श्रीशेषजी, समय हुआ वह प्राप्त॥

रोहिणी नाम की और एक, वसुदेवराय के नारी थी।
था लाल न उसकी गोदी में, वह इस चिन्ता की मारी थी॥
सप्तम सन्तान देवकी की–कहते यह हैं–ले गई वही।
मायापति की जो इच्छा थी–घटना आकर के घटी वही॥

इस प्रकार संसार में, जन्मे श्री बलराम।
शान्त नहीं फिर भी हुआ, मथुरा का कुहराम॥
गर्भ देवकी बहन का, हुआ सातवाँ नष्ट।
इस सन्देश ने कंस को, दिया बहुत ही कष्ट॥
वही कष्ट अब क्रोध में, बदल गया तत्काल।
तब दम्पति को फिर, दिया कारागृह में डाल॥

अब के मथुरा में आग लगी, जनता के नेता भड़क उठे।
ओलों की वर्षा करने को, जल वाले बादल कड़क उठे॥

सब कहने लगे एक स्वर से—"अब रण प्रचंड कर डालेंगे।
जालिम राजा का सिंहासन, हम खण्ड-खण्ड कर डालेंगे॥
अन्यायी शासक को तब तक—निज वशमें किया नहीं जाता।
जब तक कि ईंट का प्रत्युत्तर—पत्थर से दिया नहीं जाता॥
हैं व्यर्थ आँसुओं की धारें, इनसे उद्धार नहीं होगा।
खंगों की धारों के बगैर—बेड़ा यह पार नहीं होगा॥
इसलिए आज जनमण्डल ने, केसरिया बाना पहना है।
अब या तो हमको रहना है, या जालिम ही को रहना है॥
ओ मथुरा के काले पहाड़, अकुला उट्ठी है दुखीप्रजा।
रुक नहीं सकेगी फूटेगी, अब तो यह ज्वालामुखी प्रजा॥
यह ही, हाँ हाँ अब यह ही हो, लगजाय आग सब जलथल में।
तारागण उतरें भूतल पर, भूतल धँस जाय रसातल में॥
गम नहीं है यह, उस ज्वाला में—हम सबका जीवन जाएगा।
फिर नई भूमि, फिर नया गगन, फिर नया जगत बन जाएगा॥

—::※::—

❀ गाना ❀

दुनिया अगर रहे, तो रहे प्यार की दुनिया।
मिट जाय नहीं तो ये दुराचार की दुनिया॥
अन्याय राजा में, असन्तोष प्रजा में।
अच्छी नहीं लगती है, यह तकरार की दुनिया॥
विप्लव न हो देशों में, न घर-घर में फूट हो।
हो जाय जो करुणामयी, संसार की दुनिया॥
कहते हैं जिसे स्वर्ग, वह आजाय जमीं पर।
उस पार की दुनिया बने, इस पार की दुनिया॥"

—o::❀::o—

भैरव लगे अलापने, जभी देश के साज।
आई आसावरी की, तब यह प्रिय आवाज॥
'खबरदार मत ठानना, तुम उससे संग्राम।
किसी और ही शक्ति को, करना है यह काम॥
हिंसा की जो मूर्ती है, हिंसा का अवतार।
उसको हिंसा-शक्ति से, तुम न सकोगे मार॥

यह कहते कहते आ पहुँचा, सन्मुख स्वर्गीय ब्रह्मचारी।
वह ऋषिवर, वह रमता योगी, वह ब्रह्मपुत्र वीणाधारी॥
फिर कहाकि-'आत्म-शक्तियाँ ही, हिंसा का दुर्ग ढहायेंगी।
हाँ यही आँसुओं की धारें, राक्षस का नाश करायेंगी॥"

नारद का उपदेश यह, हुआ जभी स्वीकार।
यमुना-तट करने लगे-सब इस भाँति पुकार॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

'नाथ फिर डूबते भारत को बचाने आओ।
नाव मँझधार में है पार लगाने आओ॥
प्यार जिस भूमि से गोलोक में भी रखते हो।
आज उस भूमि की विपदा को मिटाने आओ॥
जिन जनों के लिये तुम, अपना कहा करते हो।
फन्दे उन अपनों के गोविन्द छुड़ाने आओ॥
हैं जो अज्ञान के अँधेरे में भटकते फिरते।
ज्ञान-दीपक से उन्हें राह दिखाने आओ॥
कर्मयोगी बनें फिर, धर्म के सब बीर बनें।
देशवालों को यह उपदेश सुनाने आओ॥'

—::❀::—

मृत्यु के ग्राह ने है, देश के गज को पकड़ा।
फिर शरण छोड़ के निज जनको जिलाने आओ ॥
अपने ही घर में लड़ा करते हैं जो 'राधेश्याम'।
उन्हीं घर वालों को फिर प्रेम सिखाने आओ ॥

—०:: ::०—

इधर प्रार्थना कर रहे थे–नर–रत्न अनेक।
उधर देवकी मात ने, स्वप्न निहारा एक ॥

भादों की कृष्ण अष्टमी थी, जो 'जन्माष्टमी' कहलाती है।
अब भी 'श्रीकृष्ण–जयन्ती' यह, घर-घर मानी जाती है ॥
बुधवार और था वृषमोदय, रजनीपति उच्च क्षेत्री था।
स्वागत को धर्मसंस्थापक के, सुस्थिर नक्षत्र रोहिणी था ॥
उस काली और अर्द्धनिशि में, जब प्राणीमात्र सो रहा था।
तब जग के जाग्रत करने को, जगपति अवतरित हो रहा था ॥
बादल अपना दल बाँध-बाँध, नभ पर दुन्दभी बजाते थे।
मानो-घनश्याम आगमन का, घनश्याम सँदेश सुनाते थे ॥

कुछ जगती थी और, कुछ सोती थी वह मात।
देखा उसने रात में, होने लगा प्रभात ॥
महातेज से भर गए, फिर पृथ्वी--आकाश।
सूर्य चन्द्र को फोड़कर, आया एक प्रकाश ॥

नीचे था लाल, रक्तसागर, जिसमें सब सृष्टि धँस रही थी।
ऊपर प्रकाश के पर्दे में, छोटी-सी मूर्ति हँस रही थी ॥
पृथ्वी पर शोर हुआ मानो, सब दुनियाएँ टकराती हैं।
नभ पर यह सुना–मधुर मीठी, मुरली की तानें आती हैं ॥
भूतल के जितने प्राणी थे, सब नभमण्डल पर जा पहुँचे।
नभमण्डल वाले तारागण, भूतल के ऊपर आ पहुँचे ॥

इस उथल-पुथल में यह देखा—सब प्रकृति नवीन हो चली है।
जग में यह लालिमा है, कालिमा विलीन हो चली है॥

इतने में यह मूर्ति ने, बढ़ा दिया आकार।
वह बढ़ती थी, हो रहा, था छोटा संसार॥

बढ़ते-बढ़ते वह भव्य मूर्ति, इतनी विस्तीर्ण अपार हुई।
सारा संसार उसी में था, वह ही सारा संसार हुई॥
अब नहीं समझ में कुछ आया, क्यों कर यह दृश्य नवीन हुआ।
वह मूर्ति विश्व में लीन हुई, या विश्व मूर्ति में लीन हुआ॥

इसी स्वप्न से देवकी—रहीं कई क्षण मौन।
फिर कुछ गद्गद् गिरासे, बोल उठी तुम कौन ?'
चतुर्भुजीवन आ गई, अब तो सन्मुख मूर्ति।
शब्द हुआ—कैसे करूँ, इस आज्ञा की पूर्ति ?

क्या खुद मैं कहूँ कौन हूँ मैं ?, हाँ कहदूँगा कहना होगा॥
आज्ञाकारी बनकर आया, तो आज्ञा में रहना होगा॥
मैं वह हूँ बाकी रहता है, 'मैं तू' का झगड़ा जहाँ नहीं।
मैं वही नहीं—मैं वहाँ नहीं—मैं कहीं नहीं—मैं कहाँ नहीं॥

❀ गाना ❀

मैं किससे कहूँ, कौन हूँ और क्या हूँ।
हूँ सबसे मिला और सबसे जुदा हूँ॥
प्रकृति भी हूँ मैं ही, पुरुष भी हूँ मैं ही।
कहीं मैं पुजारी, कहीं देवता हूँ॥
नहीं मैं नहीं हूँ तो हूँ हाँ मैं हाँ हूँ।
मैं ही नास्तिकी और आस्तिकी व्याख्या हूँ॥
निलज्जा हूँ इतना कि हूँ सर्वव्यापक।
लजीला हूँ इतना—अगोचर सदा हूँ॥

—०:: ❀ ::०—

बोल उठी फिर देवकी–यह अबला मतिमूढ़–
समझ सकेगी किस तरह–भला पहेली गूढ़ ?"
उत्तर में यह ध्वनि हुई, पाओ तुम सब कष्ट।
फिर करता हूँ स्वयं मैं, परिचय और स्पष्ट ॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

भक्तों के हृदय की मैं झनकार हो रहा हूँ।
वह मेरे और मैं उनका आधार हो रहा हूँ ॥
दो बूँद आँसुओं में, दो प्रेम के बोलों में।
मैं एक से दो होकर, संसार हो रहा हूँ ॥
मैं सृष्टि, मैं ही सृष्टा मैं तृप्ति, मैं ही तृप्ता।
मैं रुद्र बनके जग में संहार हो रहा हूँ ॥"

—:: ❀ ::—

मौन हुई अब देवकी, कह न सकी कुछ बैन।
केवल इतना ही हुआ, मूँदे दोनों नैन ॥

उस समय मूर्ति ने यह सोचा–"अब कठिन समस्या आई है।
मेरा विराट् परिचय पाकर, अत्यधिक मात घबराई है ॥
कहती है यह भोली आत्मा–मैं इस वर्णन से बाज आई।
ऐसे परिचय से बाज आई–ऐसे दर्शन से बाज आई ॥

यही सोचकर, मूर्ति फिर–बोल उठी तत्काल।
"क्यों उदास तुम हो गई ? क्यों हो तुम बेहाल ?

मैं क्या हूँ ? फिर बतलाता हूँ, मैं आज बाँसुरी वाला हूँ।
इस कृष्ण रैन का पूर्णचन्द्र, इस ब्रजमण्ड का ग्वाला हूँ ॥
जो आँखें बाट जोहती थीं, उन आँखों का मैं तारा हूँ।
हे कारागृह की तपस्विनी, मैं अष्टम लाल तुम्हारा हूँ ॥

पूर्ण होगया इस तरह—वह सुख स्वप्न अनूप।
आँख खुली तो गोद में, था बालक का रूप॥

कुछ जगते थे वसुदेव उधर, यह सुना एक जयकार हुई।
फिर देखा नभमंडल पर से, पुष्पों की वृष्टि अपार हुई॥
उठ बैठे, हुई कल्पना यह,—क्या रङ्क आज महिपाल हुआ?
'हाँ हुआ' देवकी बोल उठीं, 'उत्पन्न आठवाँ लाल हुआ॥
होता मुमुक्षु को सुख जितना, सच्चिदानन्द पद पा करके।
या योगी जितना हर्षाता, अनहद के ऊपर जा करके॥
या यों कहिये, हरि से मिलकर, होता जो मोद भक्तजन में।
उनसे भी ज्यादा हर्ष हुआ, इस समय तपस्वी-जीवन में॥
फूले अंग नहीं समाये जब, तब दूर हुए सन्ताप सभी।
हथकड़ी बेड़ियों के बन्धन, खुल गए आप से आप सभी॥
क्या जाने हरि की माया थी, या पहरेदार मिल गये थे।
कारागृह के दोनों फाटक, सचमुच उस समय खुल गये थे॥
जिस तरह कंस की आत्मा में, उस दिन नभवाणी छाई थी।
इनके भी कानों में त्यों ही, कहते हैं ध्वनि यह आई थी—
'गोकुल पहुँचाउ पिता मुझको, नँदराय-यशोदा के गृह में।
अवतरी वहाँ माया मेरी, ले आउ उसे कारागृह में॥

पुत्र सहित चलने लगे, जभी तपस्वीराय।
तभी देवकी मात के, मुख से निकली 'हा'॥

"सचमुच मैं बड़ी अभागिन हूँ, सचमुच यह दिल पत्थर का है।
जिस बेटे पर आशायें हैं, वह भी यों मुझसे छुटता है।
ऐ दुनिया वालों, बतलाओ—तुमने ऐसी माँ देखी है?
जो माँ कहलाती है—लेकिन बच्चे को पास न रखती है?

यह कहकर, फिर धीर धर, बोली जाओ लाल !
राजकुमारों से अधिक, सुखी कहाता ग्वाल ॥

कैदी के घर तुम जन्मे हो, दुनिया की कैद मिटाने को।
उत्सर्ग तुम्हारा करती हूँ, जग का उद्धार कराने को ॥
अब तक तो मुझसे नाता था, अब आर्य जाति से नाता है।
है भारत देश पिता अब से, भारतमाता अब माता है ॥

नहीं पी सके, तुम अगर, इस मैया का दूध।
गोकुल में चिन्ता नहीं, है गैया का दूध ॥

—::*::—

❀ गाना ❀

यशोदे, ले मेरी यह थाती।
भरे पूत से गोदी तेरी, और दूध से छाती।
यह जननी सर्वस अपना है तेरी ओर पठाती ॥
तेरा ही कहलायेगा, अब से यह नवजात।
मैं जननी हूँ नाम की तू है सच्ची मात ॥
जीती रही कदाचित् जो मैं, तो भेजूँगी पाती।
"वीर तिहारो लाल कुशल है ? जन्मत को उत्पाती ॥"

—०::❀::०—

भादों की उस रात में, वर्षा थी जब घोर।
पहरेवाले सोरहे थे—जब चारों ओर ॥
कारागृह से तब पिता, विदा हुआ तत्काल।
सिर के ऊपर सूप था, और सूप में लाल ॥

नीचे जब बिजली का कौंधा–गोकुल का मार्ग दिखाता था।
ऊपर तब सहसानन का फन–रक्षा भी करता जाता था॥
सिंहों के कितने ही समूह–बन में उस समय गरजते थे।
मानो–अवतार हो गया, यह राक्षस को सूचित करते थे॥
जिन चरणों से गंगा निकली, यमुना उनकी उत्साही थी।
जब एक बार छू लिया उन्हें, तो फिर आगे को थाही थी॥
वसुदेव न सोच रहे थे यह, होता है क्या होना है।
बस ध्यान एक ही था उनको, शिर पर साँवला सलोना है॥
जब पार हुए तो नजर गई–गोकुल के रहने वालों पर।
लाखों मथुरा न्योछावर थी, उन गुबरीली चौपालों पर॥
मुश्किल तमाम आसान हुई, तो अब मंजिल क्या भारी थी।
सम्मुख ही ऊँचे टीले पर, जसुदा की खुली अटारी थी॥
लगता है वक्त, साँस को भी, ऊपर से नीचे चलने में।
पर इन्हें न कुछ भी देर लगी–कन्या से पुत्र बदलने में॥
शुभ पथ पर चलने वाले का, सब काम स्वयं बन जाता है।
आता है विघ्न सामने तो, मंगलमय होकर आता है॥

जिस कारागृह में अभी, था बालक का रूप।
रुदन वहाँ करने लगी–कन्या एक अनूप॥

देवकी बोल उठीं–"स्वामी ! मैं इसे न राक्षस को दूँगी।
इसके प्राणों को रक्खूँगी, अपने प्राणों पर सहलूँगी॥
आखिर वह मेरा भाई है, क्यों नहीं दया दिखलायेगा ?
मैं उसके पाँव पकड़लूँगी, तो वह राजी हो जायेगा॥
जसुदा मेरे सुत को पाले, उसकी कन्या कटवाऊँ मैं ?
इस स्वार्थपूर्ण बदले से तो, यह अच्छा है—मरजाऊँ मैं॥

फिर कन्या और गऊ का बध, है पाप भयंकर इस जग में।
अष्टम सन्तान हो चुकी, अब-क्या होगा रहकर इस जग में?"

बोल उठे वसुदेवजी—"छोड़ो व्यथा विलाप।
नाव किनारे आ लगी, अब कैसा सन्ताप?

तुम कन्या जिसे समझती हो, यह तो ईश्वर की माया है।
हम सबकी रक्षा करने को, इसने यह रूप बनाया है॥
हे प्राणप्रिये! मन की कहदूँ, तब बोझ हटेगा आत्मा से—
अष्मट सन्तान तुम्हारी अब—लेगी प्रतिशोध आत्मा से॥
राक्षस ने रथ से केश पकड़—जिस तरह तुम्हें महि पर डाला।
त्यों ही सिंहासन से उसको, पटकेगा वह गोकुल वाला॥
जिसदिन यह विधिविधान होगा, जिसदिन यह अनुष्ठान होगा।
कारागृह का यह दुखी बाप—उस दिन ही सौख्यवान होगा॥"

यह कहते कहते हुआ—क्षत्री जभी अधीर।
पंखा तब झलने लगी—पत्नी वह गम्भीर॥
कारागृह में जिस समय—यों था प्रिय व्यवहार।
कंस रहा था उस समय, यह दुःस्वप्न निहार॥

देखा कि भूमि के भीतर से, पैदा एक धुआँ सियाह हुआ।
जिस समय उड़ा वह ऊपर को, सारा आसमाँ सियाह हुआ॥
इतने में पर्वत डोल उठे, सैकड़ों बिजलियाँ चमक उठीं।
कोहराम मच गया त्रिभुवन में, सब शान्त शक्तियाँ चमकउठीं॥
फिर उसी धुएँ में से प्रकटा, अठपहलू चक्कर पावक का—
उसमें इससे—प्रादुर्भाव हुआ—साँवरे—सलोने—बालक का॥

वह बालक एक छड़ी लेकर, जिस समय सामने को आया।
राक्षस को ऐसा विदित हुआ—वह मुझे मारने को आया॥
यह भागा, वह पीछे झपटा, यह छुपा जहाँ वह मिला वहीं।
यह घबराया वह ठहर गया, यह रोया, वह हँस पड़ा वहीं॥
अब जिधर राक्षस जाता था, पड़ता था उससे ही पाला।
हर जगह इसे दिखलाता था, बालक बस वही, छड़ीवाला॥
आखिर यह इतना चिल्लाया, खुल गई आँख चिल्लाहट में।
शय्या ही को बालक समझा, उस गड़बड़ उस घबराहट में॥
दासियाँ दास कुछ दौड़ पड़े, जा पहुँची मदिरा मतवाली।
विस्मृत हो गया स्वप्न सारा, उतरी जब आँखों में प्याली॥

इतने ही में यह खबर—ले आये दरबान।
प्रकट हुई है देवकी, के अष्टम सन्तान॥

अब क्या था, आँधी के समान—पहुँचा राक्षस कारागृह में।
अच्छे का और बुरे का कब, रहता है ध्यान दुराग्रह में?
लेकिन लड़के की जगह वहाँ, लड़की पर ज्यों ही नजर गई॥
वह नशा हिरन हो गया सभी, वह आँधी सारी उतर गई।
सोचा—"क्या यह ही सपना है, कुछ धोखा है कुछ माया है?
मैं लड़का जिसे समझता था, वह लड़की बनकर आया है॥
अच्छा-कुछ हो कोई भी हो, परलोक मुझे पहुँचाना है।"
पाशविक वृत्तियाँ बोल उठीं—इसका भी रक्त बहाना है॥"

झपट उठाया जब उसे, भीतर कारागार।
गिरी चरण में देवकी—करके हाहाकार॥

पर वह किसकी सुन सकता था, सद्भाव न जिसमें जरा रहा?
तब नाता-रिश्ता व्यर्थ हुआ, सब भाईचारा धरा रहा॥

दम्पति की आखें बहा चुकीं—जब अन्तिम करुणा की धारा।
राक्षसी हाथ ने कन्या को, तब—वहीं शिला पर दे मारा॥
किन्तु न गिरकर शिला पर, पहुँची वह आकाश।
तब राक्षस की आँख ने, देखा एक प्रकाश॥
खड़ी हुई थी वायु में, अष्टभुजी एक मूर्ति।
वही मूर्ति कर रही थी, इस लीला की पूर्ति॥
व्यर्थ नराधम, तू हुआ, मेरे ऊपर लाल।
गोकुल में हो गया है—पैदा तेरा काल॥"
अचरज से—फिर गगन पर, नैन गये तत्काल।
देखा—कुछ भी है नहीं, हुआ है प्रातःकाल॥
हाँ यमुना के पार थी—कुछ मीठी सी तान।
आत्मा माता—पिता की, सुनती थी वह गान॥

—::*::—

❀ गाना ❀

बधाई नन्द के द्वार।
गो—कुल गोकुल में आनन्द है, सुख की सरिता बही अपार।
भादों की यमुना में जैसे नहीं समाती जल की धार—
किन्तु नन्द की महानन्द है, कृष्ण-निशा का चन्द्र निहार।
पूर्ण चन्द्र को निरख निरखकर उमड़ें जैसे पारावार॥
घर—घर से युवतियाँ चली हैं—कर—करके सोलह श्रृङ्गार।
मृगनैनी, कोकिल—पिक—बैनी—गावत गीत मंगलाचार॥
बल—बल है कोई लालन पर कोई नजरें रही उतार।
'राधेश्याम' एक की सम्पति, है अनेक का प्राणाधार॥

—०::❀::०—

कारागृह के द्वार पर, ठीक उसी क्षण आन।
वीणा में देवर्षि, गा उठ्ठे यह गान—

❀ गाना ❀

"बढ़ो दर्शन को भक्तों ! श्यामसुन्दर जग में आया है ।
जगत् के दुख मिटाने को जगद्धर जग में आया है ।।
जो है सुख-सिन्धु सुखराशी, अगोचर और अविनाशी ।
वही गोलोक-वासी ग्वाल बनकर जग में आया है ।।
नहीं है आज उदयाचल से कुछ कम शान गोकुल की ।
कमल खिल-खिल के कहते हैं, दिवाकर जग में आया है ।।
कहाँ हैं विश्व के जालिम, सँभल जायें-चुनौती है-
कि खुद करने को शासन वह विशम्भर जग में आया है !!

बारम्बार जब इस तरह, था आनन्द अपार ।
सुरमण्डल में भी, तभी एक हुई जयकार ।।

—❀:: ❀ ::०—

❀ आरती ❀

"हरि जू की आरती बनी ।
अति विचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी ।
कच्छप अति आसन अनूप अति डाँडी शेष फनी ।।
मही-शराब सप्तसागर-घृत, बाती शैल बनी ।
रवि-शशि ज्योति जगत्-परिपूरण, हरत तिमिर रजनी ।।
उड़त फूल उडुगन नभ-अन्तर अंजन घटी घनी ।
नारदादि, सनकादि, प्रजापति, सुर, नर, असुर अनी ।।
काल, कर्म, गुण, अगुण, अन्त कछु प्रभु इच्छा रजनी ।
यह परिताप दाप सुनिरन्तर, लोक सकल भजनी ।।
जाके उदित नचत नानाविध गति अपनी-अपनी ।
'सूरदास सब प्रकृति धातुमय, अति विचित्र सजनी ।।"

(सूरसागर)

❀ इति ❀

नोट—इससे आगे की कथा "नन्द-महोत्सव" नामक पुस्तक में पढ़िये ।

प्रार्थना

—०:: ::०—

जिस भूमि पं वृक्ष करील के हैं ।
खारी जल-कूप जहाँ दिखलावें ॥
वन्दन उत्पात करें जहाँ पर ।
गारी देकर जहाँ लोग बुलावें ॥
उस झङ्झड़ जंगड़ के पुर का ।
वैकुण्ठ समान जो मान बढ़ावें ॥
वे ही गिरधारी विहारी निहार ।
हमारी भी ओर हमें अपनावें ॥
मथुरा में जो जन्म ले चोरी ही से ।
फिर चोरी ही से जो गोकुल जावें ॥
निज रूप को ऐसा चुरावें कि जो—
ब्रह्मा और इन्द्र भी जो सदा ॥
चितचोर कहाकर भी जो सदा ।
संसार के माखन चोर कहावें ॥
बस वे ब्रजवारे-हमारे सभी—
भीतर बाहर के दोष चुरावें ॥

नन्द–महोत्सव

कथा प्रारम्भ

श्रीशुक बोले–नृप सुनो, मेरा एक विचार—
भादों ही में किसलिए, हुआ कृष्ण-अवतार ?

इसलिए कि–अपने भारत में भादों अति श्रेष्ठ कहाता है।
बारहों मांस की गणना में, यह राजा माना जाता है॥
कवि की कल्पना सुनाता हूँ, अन्युक्ति नहीं करता हूँ मैं।
अपने इस पक्ष-समर्थन में, दृष्टान्त एक कहता हूँ मैं—

फागुन के घर एक दिन, पहुँचे भादों राव।
देखा विचित्र प्रकार का, उसके यहाँ जमाव॥

रस-रंग कहीं पर होते थे, ढफ ढोल कहीं पर बजते थे।
इत्रों में पिसी हुई केसर, आपुस में लोग छिड़कते थे॥
बहुमूल्य भूषणों वस्त्रों से, नर नारी सभी सुशोभित थे।
भरपूर छा रही थी बहार, सारे ही फूल प्रफुल्लित थे॥

भादों जो मुस्का पड़े, यह आनन्द निहार।
आये अपने गाँव को, कर पूरी मनुहार॥

उसी वर्ष, प्रति मिलन का करने पूर्ण सनेह।
फागुन भी आया कहीं, भादोंजी के गेह॥
कीचड़ काँधा, देखकर सिकुड़ी, उसकी नाक।
बोला-'तुम रखते नहीं, मित्र सफाई खाक'॥
फागुन की जब यों सुनी–शानदार तकरीर।
भादों फिर मुस्का पड़े–होकर कुछ गम्भीर॥
इस मुस्काहट ने किया, जभी तीरकाकाम।
फागुन तत्क्षण चल दिया, करके इन्हें प्रणाम॥
अब सुनिये भादों हुए, सूखे अगले साल।
त्राहि-त्राहि घर-घर हुई, जग में पड़ा अकाल॥

फिर पहुँचे जब यह फागुन के, तो नजर न पड़ी बहार कहीं।
था बारहबाट ठाट सारा, गुल न था न था गुलजार कहीं॥
सूखी हड्डियाँ लिए फागुन बोला--'लज्जित यह दुर्जन है।
वह आपका 'कीचड़ काँधा' ही सारी दुनिया का जीवन है'॥

नृपति परीक्षित, सुन रहे हो तुम देकर ध्यान?
नींव हमेशा राज्य की, हैं ग्रामीण किसान॥
इसीलिए तो छोड़कर ऊँचे ऊँचे धाम।
भाया है गोविन्द को, गोकुल जैसा ग्राम॥

अब समझ गए तुम? भादों में क्यों जन्मा, जगदाधारी है?
गोकुल ही में क्यों आया वह, जो चौदह भुवन बिहारी है?

वह भूमि धन्य, वह धूरि धन्य जो जीवों की अनदाता है।
जग-पालक भी जग में आकर, उसका यों मान बढ़ाता है॥

यही नहीं, जो भाद्रपद, में जन्मे भगवान।
साथी भी अवतरे थे, इसी मास में आन॥

वह अन्नपूर्णा महाशक्ति, जो 'राधा' होकर जन्मी है।
उसकी तिथि जगत् जानता है, भादों की शुक्ल-अष्टमी है॥
है प्रभा–पूर्व चन्द्रोदय के, रावल में आकर चमकी थी।
है उसका नाम प्रथम इनसे, कारण–वह पहले प्रकटी थी॥

भादों ही में हुए हैं, हलधारी भी भ्रात।
"षष्ठी" इनका जन्मदिन, है जग में विख्यात॥

जब कंस दैत्य के जुल्मों से ,मथुरा वाले घबराये थे।
तो अपना प्यारा नगर छोड़, ग्रामों में बसने आये थे॥
कहीं वसुदेव कहाँ आते ? थी उनके आगे कठिनाई।
इसलिए रोहिणी-गोकुल में–नन्द की रक्षा में पहुँचाई॥

इन्हीं रोहिणी के हुए–'बलदाऊ'–बलधाम'।
अब भी घर-घर है विदित, जिसका पावन नाम॥

रामावतार का लघु भ्राता, इस बार बड़ा बनकर आया।
इसलिए न केवल 'राम' रहा, 'बलराम' जगत में कहलाया॥
संकर्षण भी है नाम इनका, यह नाम इसलिए पाया है।
देवकी–गर्भ का बालक यह, रोहिणी–गर्भ में आया है॥

अरज है नहीं, न शंका कछु भाव यहाँ पर आता है।
यह योगशक्ति की बातें हैं—जिनसे ऐसा हो जाता है॥
मतलब बस यह है—इन्हीं दिनों, सङ्कर्षण भी प्रकटाये थे।
किसलिए न भादों में आते, जब हलधर होकर आये थे॥
कहते हैं इसीलिए हम यह—यह राजा मास हमारा है।
दौं जगकी जो कि मिटाता है, वह भादों, जग का प्यारा है॥

अच्छा अब अगली कथा श्रवण करो महिपाल।
नवमी—भादों बदी—का, था वह प्रातःकाल॥
गाय चराने उस दिवस गये न गोपकुमार।
'दधिकाँदों होने लगी, नन्दराय के द्वार॥

'दधिकाँदों' महा हर्षसूचक है एक प्राण लो ग्वालों में।
जो दूध दही के हैं कुबेर, उस गायों, उन गोपालों में॥
जिस तरह कुमकुमे, पिचकारे, होली में लोग चलाते हैं।
तैसे ही दूध दही माखन, 'दधिकाँदों' में बरसाते हैं॥
जो देश गऊ माता का है, जिस जगह दूध की नहरें हैं।
यह मौजें उसी जगह की हैं, यह उसी जगह की लहरें हैं॥
गोकुल की उस 'दधिकाँधों' पर सचमुच हैरत में दुनिया थी।
थी उधर अगर जल की जमुना, तो इधर दही की यमुना थी॥

पाई हो जिस देश ने सम्पति ईश्वर दत्त।
क्यों न, वहाँ के लोग हों, ऐसे हर्षोन्मत्त॥

देखिये प्रकृति का क्रम—दो है, उपजाऊ धरती खास यहाँ।
फिर जल से उसे सींचने को आता है चातुर्मास वहाँ॥
गोमाताओं के बछड़ों से, धरती यह जोती जाती है।
जो खाने और पहनने को गेहूँ, कपास, उपजाती है॥
खानें हैं ऐसी कई यहाँ, जिनसे हम सोना लेते हैं।
अहि, गिरि, गन, ऐसे ऐसे हैं, मणि माणिक मुक्ता देते हैं॥
मुनियों को भी इस जगह खूब मिल जाता कन्द, मूल फल है।
पानी पीने को—मधुर कुएँ, फिर—गंगा यमुना का जल है॥
जब ऐसा देश हमारा है, क्यों न हो प्रजा खुशहाल यहाँ।
आया करते हैं इसीलिए, श्रीराम यहाँ, नन्दलाल यहाँ॥
गोकुल की उस दधिकाँदों पर, यह सच है—त्रिभुवन वारी है।
वैकुण्ठ स्वर्ग तक का उत्सव, उस उत्सव पर बलिहारी है॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

गोकुल फूला नहीं समाय, जन्मे सामलिया गोपाल।
नन्दरानी ने ढोटा जाया, घर घर से दधि माखन खाया॥
क्षीरसिन्धु को लजा रही है, नन्दजी की चौपाल।
शुक कहते हैं, सुनो परीक्षित, तुमहो अबतक सावधान चित॥
मैं तो डूबा दधि काँदों में लीजो मुझे संभाल।

—०:: ❀ ::०—

नन्दराय ही के नहीं, था सबके त्योहार।
यह था, ग्राम-सनेह या-आयुस का व्यवहार॥

हर कोठा, ध्वजा पताका से, वन्दनवारों से साजा था।
घर-घर में चौक पुर रहे थे, गृह गृह में कलश विराजा था॥
उस एक चन्द्रमा का फैला, जब सब नभ पर उजियाला है।
कल्पना हुई-नन्द का लाला, सारे गोकुल का लाला है॥

सोभर के बाहर उधर, था आनन्द महान।
नाँच रही थी नारियाँ, कर कर मंगल गान॥

शर्बती, कपासी, बादामी, चुनरियाँ बहार कर रही थीं।
पायल, पाजेब, रामझोंल, झाँझ झनकार कर रही थीं॥
माँगों में सबकी था सिंदूर नथ, न्यारी झोंके खाती थी।
मानो-सौभाग्य-यन्त्र पाकर, सम्पूर्ण सृष्टि उमड़ाती थी॥
बाणी, इन्द्राणी, रुद्राणी, धात्री बन-बनकर धाई थीं।
सौरी की पौरी के भीतर, बौरा हो होकर छाई थीं॥
तृष्णा यह थी-जैसे भी हो उस छवि का दर्शन पायें हम।
यशुमति की दासी ही बनकर, ब्रजपतिको गोद खिलायें हम॥

नन्दरानी का हुक्म था-"मन मांगी सब पाँय।
याचक मेरे द्वार से खाली हाथ न जाँय॥"
नन्दराय का शौक था-"सर्वस आज लुटाँय।
जग के सारे याचकी, अयाचकी हो जाँय॥"

द्विजदल बोला नन्द से—"हो जाइये तयार।
करिये कपड़े पहन कर, जातकर्म-संस्कार॥"
गोपों में से तब उठा, बूढ़ा एक पुकार—
"कपड़े कैसे आज तो, कर डालो शृंगार!!
वेद विदित जो नीति थी, कुल की थी जो रीति।
नन्दराय ने वह सभी, की सानन्द सप्रीति॥

उपरोहित और विप्रदल का, सब भाँति पूर्ण सम्मान किया।
नौलाख धेनु के स्वामी ने, दो लाख धेनु का दान किया॥
फिर दिए—तिलों के सात शैल, ढकवाकर रत्नों वस्त्रों से।
जा छिपा स्वर्ग में कल्पवृक्ष, इन उदारता के दानों से॥

देखा ज्यों ही नन्द ने—सुघर सलोना लाल।
मन ही मन फुरना हुई—"मैं हो गया निहाल॥"

बोला जब हृदय सरोवर यों—"यह नील कमल तो मेरा है।"
तब कहा आँख ने—"यह अंजन यह, अमृत फल तो मेरा है॥"
मस्तिक पुकार उठा तत्क्षण-"यह आनन्द-घन जल थल का है।
अंकुर यह कल्पलता का है, पल्लव यह जगमंगल का है॥

पौरी के बाहर हुआ—छठे दिवस—जब लाल।
भेटें तब लाने लगे, ब्रज के गोपी ग्वाल॥

हँसली खड़ुआँ, कौंधनियों की, तादाद न आँगन भर में थी।
आगई बगलबही इतनी, रखने को ठौर न घर में थी॥

रोहिणी दे रही थीं बीड़े, एक-एक ब्रजनारी को।
बलराम उतर कर गोदी से, तब खींच रहे थे साड़ी को॥
मानो, वे भी यह कहते थे–"क्यों मुझे भूलती मैया है।
मैं भी यह बीड़ा खाऊँगा, मेरे घर जन्मा भैया है॥"

गोकुल आये उसी दिन, बरसाने के नाथ।
पत्नी कीरत के सहित, राधा भी थी साथ॥

यह मिले नन्दजी से जाकर, कीरति भेंटी श्रीयशुमति से।
राधा के कमल नयन खेले, उन बाल भास्कर, ब्रजपति से॥
पहुँची जब प्यारी आँखों में, आया जब प्यारा आँखों में।
गोलोकधाम का घूम गया, सारा नज्जारा आँखों में॥

पलभर को जब राधिका, हुई नजर की ओट।
गोदीवाले लाल के, लगी हृदय में चोट॥
चौंक पड़ा–यक बारगी, वह अति कोमल गात।
लगी पिलाने तुरत ही—दूध यशोदा मात॥

उस समय न जाने-भूख न थी, या ज्यादा पिया न जाता था।
मैया जब दूध पिलाती थी, तो ऊपर बह वह जाता था॥
कुछ गोप कुमारी बोल उठीं–"हो रहा अनमना भैया है।
क्या जाने दूध पिलाना यह, मैया यह–फूहड़ मैया है॥

उठा भाव यह हृदय में, मैया के तत्काल।
कैसे समझाऊँ इन्हें, जो है मेरा हाल?

ममता का एक क्षीर–सागर, छाती से आज उमड़ता है।
मैं रोक नहीं सकता उसको, कब मेरे रोके रुकता है॥
बहने दो–ऊपर बहती है, यह धार न पीछे जायेगी।
छोहरा पिये या नहीं पिये, मैया तो दूध पिलायेगी॥

आगे बढ़कर–उस समय, बोली कीरत मात।
"नजर लगी है लाल को, और न कछु है बात॥
इतने में फिर सामने, पहुँची राधा आन।
क्षीरसिन्धु वासी–लगा, करने तब पय पान॥

यह गूढ़भाव, यह गुप्तभाव, अनुरागी हृदयों ने समझा।
राधा की नजरों ने समझा, माधव की नजरों ने समझा॥
नजरों नजरों ने तय करली, घटना जो यह क्षणभर की थी।
बस फेर नजर फिरने का था, कुछ और न बात नजर को थी॥

घर के भीतर जिस समय, था यह मोद महान।
ढाढ़ी, ढाड़िन द्वार पर, छेड़ रहे थे तान॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

चमन में खिल आया है–लाला मुबारक।
तुम्हें नन्दजी हो ये लाला मुबारक॥
जिन आँखों में—बेपुत्र के था अँधेरा।
उन आँखों में आया–उजाला मुबारक॥

रँभाकर बताती हैं—गोकुल की गायें।
सलोना—समलिया वो ग्वाला मुबारक ॥
खुशी में उठा फूल—सब नाट्य—मन्दिर।
कि आया है नटवर निराला मुबारक ॥

—०:: ❀ ::०—

जितने ही सुर उस समय, वेष विविधबिध धार।
ब्रजनन्दन को निरखने, आये नन्द के द्वार ॥

कोई बन्दी, कोई चारण, कोई याचक होके आया।
नर्त्तक होकर आया कोई, कोई गायक होकर आया ॥
कैलास—निवासी शंकर भी, गोकुलवासी के घर आये।
भिक्षा की रूप—माधुरी का, बूढ़े बाबा बनकर आये ॥

दरबाजे पर ही सदा—चिरजीव ब्रजराय।
बाबा के भी वास्ते, भिक्षा कुछ मिलजाय ॥
दासी भेजी द्वार पर, जसुदा ने तत्काल।
"अभी तलक रह गया है—क्या कोई कंगाल ?

दासी ने देखा द्वारे पर—"है खड़ा एक औघड़ बाबा।
भस्मीवाला, डमरूवाला, खप्पड़वाला, फक्कड़ बाबा ॥
लट बिखरा है पिंड़लियों तलक, गम्भीर त्रिशूल हाथ में है !
रुद्राक्ष कण्ठ में शोभित है, प्यारा नादिया साथ में है ॥"

दासी कुछ घबरा उठी—देख वेष विकराल।
फिर धीरज धरकर कहा—'क्या चाहिए दयाल ?

बाबा बोले—'वास्ता क्या तुमसे, तुम जाउ।
जिसने भेजा है तुम्हें, उसको यहाँ पठाउ॥'
दासी ने चिढ़कर कहा—भौंहों को मटकाय।
"नदरानी को क्या पड़ी, जो द्वारे पर आय॥"
बाबा कुछ गम्भीर हो—बोल पड़े तत्काल।
'इस भिक्षुक का करेंगी, पूरा वही सवाल॥
उनका जब यह हुक्म है—मन माँगो सब पायँ।
तो हम—यह माँगते, वही यहाँ पर आयँ॥'
अब दासी लाचार थी—चली फुलाकर गाल।
कहा यशोदा मात से—जाकर सारा हाल॥

"ब्रजरानी एक विकट बाबा, द्वारे पर आन विराजा है।
इस तरह बोलता है मानो, दुनिया का वह ही राजा है॥
घर—गृहस्थियों का, भिखमंगे, नाकों दम करदेते हैं।
भिक्षा क्यों कहो, धर्मकर है, जो धरना देकर लेते हैं॥
यह बीमारी खो देने की है, किसी जगह माजून नहीं"।
ऐसों के लिए—राज में भी, बनता कोई कानून नहीं॥
मैं उससे बात नहीं करती, मुझको फटकार बताता है।
तुम गृह-स्वामिनी, गृह-लक्ष्मी हो, इस कारण तुम्हें बुलाता है॥

'चल हट'—यह कहकर चली, द्वारे को वह मात।
'तू क्या जाने, न समझ, अतिथि-धर्म की बात॥'

बाबा से कहा—'हुई पूरी–यह लो याचना तुम्हारी है।
अपने लाला के मंगल हित, द्वारे आई महतारी है॥
हाँ हाँ–मैंने यह ठानी है, मुँह माँगा दूँगी याचक को।
सन्तुष्ट हृदय से भिक्षुकदल, आशीर्वाद दे बालक को॥"

पुलक उठा बाबा, कह–याचक हुआ निहाल।
यह उदारता है तभी, पाया ऐसा लाल॥

जो चरण द्वार तक आये हैं, उनकी रज मुझसे बढ़कर है।
ब्रजरज का मान बढ़ायेगी, यह गौरव इसके भीतर है॥
मैया, भोजन चाहिये नहीं, धन की भी नहीं कांक्षा है।
बालक का दर्शन करने की, बूढ़ी आँखों की इच्छा है॥

"अच्छा, उसको ही यहाँ, लाती हूँ अब हाल।"
यह कह, माँ घर में गई, फिर आई तत्काल॥
वह नीलाम्बुज के सदृश, सुन्दर श्याम शरीर।
बाल रूप में आ गया, जब बाबा के तीर॥
नाच उठा बाबा तभी, छेड़ी अपनी तान।
भोली माँ समझी नहीं, वह वाणी वह गान॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

"हे जगन्नियन्ता जगपालक, हे जगदाधार प्रणाम तुझे।
दुनिया के सच्चे बादशाह, हे बारम्बार प्रणाम तुझे॥

अगुष्ठ चूमता प्रलय समय, जो अक्षयवट के पत्ते पर।
वह चित्रकार, हो चित्ररूप, प्रकटा है व्रज के पर्दे पर॥
जग जिसका खेल-खिलौना है, रीझा है वही खिलौने पर।
मैं क्या, त्रिभुवन बलिहारी है, तुझसे नटवर अलबेले पर॥
मेरे मन मानस के मराल, जीवन आधार प्रणाम तुझे।
दुनिया के सच्चे बाहशाह, है बारम्बार प्रणाम तुझे॥
तेरे जन खूब जानते हैं, जो तेरी लीला माया है।
शासन का कार्य जाँचने को, शायद इस ढंग से आया है॥
जग के भीतर छुप जाने को, क्या बालक रूप बनाया है।
जग कैसे तुझे भुला देगा, जब जग में तुही समाया है॥
हे निराकार, हे नराकार, मेरे सरकार प्रणाम तुझे।
दुनिया के सच्चे बादशाह, है बारम्बार प्रणाम तुझे॥"

—::※::—

बाबा का पूरा हुआ, जब इस तरह सवाल।
लाला को लेकर चली, घर में माँ—तत्काल॥
किन्तु अरे यह क्या हुआ! लाला हुआ उदास।
दासी क्या रहता नहीं, माता तक के पास॥
ऐसा रोया—चुप नहीं, होता किसी प्रकार।
दूध आँख से बह चला, हो आँसू की धार॥

घबराकर कहा जशोदा ने—"वह कहाँ गया जोगी बाबा?
कर गया है मेरे लाला पर, कुछ टोना सा जोगी बाबा?

अच्छा यह होम किया मैंने, जो अपना हाथ जला लाई।
लाला को द्वारे ले जाकर, मैं ही यह रोग लगा लाई॥

मन ही मन मुस्का पड़ा, वह गोदी का लाल।
तुमको क्या मालुम—माँ, दो हृदयों का हाल॥

वह जोगी वह बूढ़ा बाबा, मेरा अति प्रिय अभिन्न जन है।
मैं तन हूँ तो वह आत्मा है, मैं आत्मा हूँ तो वह तन है॥
उसके इस सम्मिलन का, बदला मैं अभी चुकाऊँगा।
तब उसने मुझे बुलाया था, अब मैं उसको बुलवाऊँगा॥

वही हुई जो बात थी—लगी न उसमें देर।
बाबा को कुछ दूर से, लाई दासी टेर॥
हँसा ठहाका मार के, वह योगी अवधूत।
भूल गया था मैं—इसे देना जरा भभूत॥

चिन्ता की बात नहीं है–माँ मैं इसे ठीक कर जाऊँगा।
मैंने ही अगर रुलाया है, तो मैं ही इसे चुपाऊँगा॥
मुँह इसका मेरी ओर करो, क्यों छुपा रही हो आँचल में।
अपनी इन बड़ी जटाओं से, सब रोग झाड़ता हूँ पल में॥

मतलब यह था–"तुम बड़े, मैं छोटा हूँ नाथ।
पर सबके आगे तुम्हें, कैसे नाऊँ माथ॥
इसीलिए-इस समय—है, यह ही उचित उपाय।
मेरे मस्तक की जटा, उन चरणों तक जाय॥"

यह दो अनन्य आत्माओं की, लीला थी जो हो गई वहाँ।
लेखक क्या लिखे और ज्यादा, जब उसकी मति खोगई वहाँ॥
माया में जो भरमाया है, इस माया को क्या वह समझे।
कोई यह भाव नहीं समझा, या वह समझे या वह समझे॥

बालक अच्छा हो गया, रहा न किंचित क्लेश।
बाबा फौरन चल दिया, कहकर—'जय हृदयेश'॥
उधर नन्द के सामने, था आनन्द महान।
नाच रहे थे देवगण, गा-गाकर प्रिय गान॥
पहुँचा बाबा वहीं पर, पुलकि-प्रफुल्लित गात।
कही सभी साथियों से, इन दर्शन की बात॥

तुम नाच नाचते रहो यहाँ, इस आशा और आसरे में।
ले आये यशोदा नन्दन को, शायद कोई इस जल्से में॥
पर हम तो दर्शन कर आये, मैया की गोदी में उसका।
खिंच गया चित्र जीवन भर को, आँखों की पुतली में उसका॥
मिलता तो वह, सब ही से है, सब ही की सुधि ले लेता है।
पर पहले प्रेम अधीरों को, इस तरह दरस दे देता है॥
सचमुच मैं आज कृतार्थ हुआ, सचमुच तन है बड़भागी यह।
अनुराग रहे यह जीवन भर, माँगता यही अनुरागी यह॥

डमरू में से ध्वनि हुई—'जयति सच्चिदानन्द'।
गया तुरत कैलास को, वह सुरूप स्वच्छन्द॥

कहना यह है–इस तरह, थी–नित नई बहार।
गोकुल पर थे उन दिनों, दोनों जग बलिहार॥
दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा—जब गोदी का लाल।
नामकरण–संस्कार का, तब आया शुभ काल॥

श्रीगर्गाचार्य पधारे थे, इस प्रिय अवसर पर मथुरा से।
वसुदेवराय ने भेजा था—सब हाल बताकर मथुरा से॥
अब भी है अमर नाम इनका, परिचित हर ग्रन्थ रचियता है।
दूसरी भागवत के समान–इनकी वह गर्गसंहिता है॥

वैदिक–लौकिक रीतियाँ, करके भली प्रकार।
बोले मुनि—"यह पुत्र तो, है जग का शृंगार॥
जन्म पत्रिका का कहूँ–फल मैं क्या नदराव।
भावों का जब मुझी पर, अद्भुत पड़ा प्रभाव!!

वृष लग्न जन्म में है–जिसमें चन्द्रमा उच्च का बैठा है,।
चौथे हैं सिंह सूर्य का तो, पंचम में बुध कन्या का है॥
है राहु सातवें, केतु प्रथम, छठवें शनि, शुक्र तुला में है।
आया है नवें मकर–मंगल, तो गुरु स्वगृही ग्यारवें हैं॥
मैं पूछ रहा हूँ आँखों से–'ऐसे ग्रह कहीं नजर आए?
उत्तर में नजर कह रही है–'अब तक नजर नहीं आए?
इस कारण फल की व्याख्या में, कह देना है चुपचाप यही!
यह बालक अद्वितीय ही है, अपनी उपमा है आप यही॥

महातेज की राशि जो, शोभा का जो धाम।
सोच रहा हूँ क्या धरूँ—उस बालक का नाम॥

यों तो रोहिणी-नखत के यह—तीसरे चरण में जन्मा है।
इसलिए 'बिहारी' लिखता हूँ, यह नाम राशि का जँचता है॥
पर—उच्चारण में, नाम अपना, खुद इसका रूप बताएगा।
रोहिणी-तनय 'संकर्षण' तो, जग में यह 'कृष्ण' कहलाएगा॥
इतने पर भी यह इच्छा है—रखदूँ कुछ नाम सोचकर मैं।
अपना कर्तव्य करूँ पूरा—इस सुन्दर शुभ अवसर पर मैं॥
रोहिणी, तुम्हारे बेटे का, शुभ नाम—'राम' कहता हूँ मैं—
और इसका नाम जगत सुनले, 'श्रीवासुदेव' रखता हूँ मैं॥

नन्दराय के पुत्र का, 'वासुदेव' हो नाम!
सचमुच गर्गाचार्य ने, किया यहाँ पर काम॥
इतने में दौड़े हुए—आ पहुँचे कुछ ग्वाल।
बोले--"हम तो कहेंगे--सामलिया गोपाल॥"

नन्दजी के मित्र टेर उठ्ठे--नन्दलाला है, नन्दनन्दन है।
ब्रज-बनिताएँ जो बैठी थीं--बोली अपना--'मनमोहन है॥
रोहिणी पुकारी गोदी ले--यह इस दाऊ का भैया है।
जसुदा ने कहा बलैया ले--"मेरा तो कुँवर कन्हैया है॥

द्वारे से आई तभी, मीठी—मीठी तान।
वीणा पर गा रहा था, कोई ऐसा गान॥

❀ गाना ❀

किसी को तुम 'कन्हैया' हो, किसी को नन्दनन्दन हो।
भिखारी जो तुम्हारे हैं, उन्हें तुम विश्व का धन हो॥
अमानत हो किसी की तुम, छुपो मत गोद में माँ की।
उछल कर यह बतादो--'धर्म-संस्थापक' जनार्दन हो॥
तुम्हें गोलोक से, गोकुल तलक जो खींच लाई हैं--
पुकारें वे ही कहती हैं--'न खाली यह लड़कपन हो'॥
घड़ी है आज की सचमुच, मुबारक दिन मुबारक है।
मुबारक है ये पृथ्वी, जिसमें पृथ्वीपति का दर्शन हो॥
ये आँखें तो उसी दिन होयेंगी बस तृप्त 'राधेश्याम'।
कदमका तरु हो, यमुना तट हो, और फिर अपना मोहन हो॥

—०:: ❀ ::०—

यहाँ तलक कह चुके-यह वत्तान्त पवित्र।
अब वहँ सुनियए बीच में, रह जो गया चरित्र॥

कारागृहवाली घटना का, आश्चर्य कंस को बड़ा रहा।
वसुदेव देवकी से-लेकिन, बर्ताव न उतना कड़ा रहा॥
बन्धन से मुक्त उन्हें करके, कुछ देर क्षमा माँगी उनसे।
मथुरा से बाहर आँय नहीं, बस इतनी शर्त रही उनसे॥

अगले ही दिन दैत्य ने, जोड़ा निज दर्बार।
बुलवाये मन्त्रणा को, सभी मल्ल सर्दार॥

मुष्टिक, चाणूर, अरिष्ट, कूट, श, तोशल केशी व्योमासुर।
शम्बर प्रलम्ब अघ तृणावर्त्त, धेनुक वत्सासुर वृषभासुर॥
थे एक एक से बढ़े हुए, नामी अपने अपने घर के।
नाना देशों से जयी कंस, लाया था दास बना करके॥
पूछी जो राय लगे करने, भोंडी बेसुरी अलाप सभी।
मतवाले अन्धे औंधे खल, बक उठे अनाप सनाप सभी॥
महाराज आपके बल से तो, त्रिभुवन तक कम्पित होता है।
लक्ष्मीपति भी भय के मारे, बस क्षीरसिन्धु में सोता है॥

उस राजा का हो नहीं, सकता कभी सुधार।
जिसके मन्त्री–नीच हों, या हों महा गँवार॥

राजाओं में प्रायः देखा––सद्भाव जाग भी जाते हैं।
पर अधम मन्त्रिमंडल हो तो, वे तुरत दबाये जाते हैं॥
यह रोग तभी जाता है जब, राजा अपनी मति का होवे।
या तो हो नहीं मन्त्रि–मण्डल, या होवे तो अच्छा होवे॥

तय कर डाला सबों ने, मिलकर यही विचार।
जैसे भी हो करेंगे, बैरी का संहार॥

जितने भी बच्चे जन्मे हैं–दस दिन के भीतर–ब्रजभर में।
उन सबका रक्त बहादेंगे–हम सब जा–जाकर घर घर में॥"
जो नाव डूबने वाली थी, वह स्वयं इस तरह डोल उठी।
या–जुल्मों की हद करने को, होनी यों सिर पर बोल उठी॥

वर्णन भी उस 'काल' का, है कितना विकराल।
नित्य नष्ट हो रहे थे, गोदी वाले लाल॥
गोकुल पर भी छा गयीं, यह प्रवृत्तियाँ पोच।
किन्तु—नन्द के घर तलक, जाते था संकोच॥
आखिर—इसके वास्ते, यह रच दिया उपाय।
बक की भगिनी—पूतना, उस मन्दिर में जाय॥
यह उस दिन की बात है, बैठक थी जब बन्द।
कर देने मथुरापुरी, गए हुए थे नन्द॥
जसुमति के ढिग आ गई, सुन्दर युवती एक।
गोद ले लिया कृष्ण को, करके युक्ति अनेक॥

ज्यों ही जसुदा की नजर बची, झट दूध पिलाने लगी उन्हें।
क्या हुआ न जाने इतने में, बाहर ले जाने लगी उन्हें॥
क्षणभर में दुनिया ने देखा—एक लाश पड़ी थी पृथ्वी पर।
जसुदा का लाल खेलता था, मुस्का के उसकी छाती पर॥
मानो—यह सोच रहा था वह—त्रेता का राघव अवतारी।
ताड़का—निधन था वहाँ प्रथम, पूतना यहाँ पहले मारी॥
अबला का यह संहार नहीं, यह है संहार राक्षसी का।
जितना हो, हो बर्बाद शीघ्र, ऐसा संसार गन्दगी का॥"
कहते हैं—खींचे प्राण तलक—गोदी के दूध पिलैया ने।
यों खेल ही में उसको, संहारा कुँवर कन्हैया ने॥

या यह था–तीव्र हलाहल, वह लाई थी लगा छातियों में।
जिसके कारण खुद उसके ही, फैला वह नशा नाड़ियों में॥
होकर उन्मत्त भाग उठ्ठी, फिर परमधाम को प्राप्त हुई।
जो कुआँ दूसरे को खोदा, उसमें यों स्वयं समाप्त हुई॥

वापिस आए उसी दिन–मथुरा से नँदराय।
गोद उठाकर कृष्ण को, बोले टली बलाय!!"
भाँति-भाँति के—पुत्र से–फिर करवाये दान।
कहा—"हमारे भाग्य ने, रक्खे इसके प्रान॥"

गोपों ने–इसके बाद वहीं, यमुना-तट शव लेजा करके।
संस्कार किया इस दुष्टा का, विधिपूर्वक चिता बना करके॥
यह आर्य–धर्म की खूबी है, दुश्मन तक का है मान यहाँ।
सभ्यता हमारी देती हैं, राक्षस को भी जलदान यहाँ॥

हुए और भी उन दिनों, गोकुल में उत्पात।
कहते हैं संक्षेप में, यहाँ एक दो बात॥

रोहिणी नक्षत्र में एक दिवस, वह मातु न्हिलाकर लालन को।
छकड़े के तले पालने में, लाई पौढ़ाकर लालन को॥
कुछ देर बाद आवाज हुई, देखा छकड़ा लालन पर था।
लालन लेकिन था, निर्विकार, यह भार उसके तन पर था॥

'उत्कच' नामक दैत्य का, था इस भाँति सँहार।
वायुरूप में, गया वह, यों गोलोक सिधार॥

फिर एक रोज आँधी आई, तो घर में नहीं लाड़ले थे।
ले उड़ा चोंच में दाब काक ! या झोंके उठा ले गये थे ॥
जब उतर गया वह वायु-वेग तो राक्षस एक मरा पाया।
उसके समीप ही ग्वालों ने, सामलिया को हँसता पाया ॥
यों 'तृणवर्त्त का बध करके, आँखें खोली उजियाले ने।
अथवा इस भाँति चुनौती दी, मथुरा को गोकुल वालों ने ॥
यह ही वह चरित्र बीच का था, जो हरि ने किया लड़कपन में।
उस षोडश कलावतारी ने यों, परिचय दिया लड़कपन में ॥
अब कहते थे हम जो प्रसंग, फिर उस प्रसंग पर आते है।
उस बालरूप की कुछ लीला—भक्तों के लिए सुनाते हैं ॥

एक रोज नन्दराय ने, देखा प्रातःकाल।
अपने-पग अंगुल को, चूम रहा है लाल ॥

यह समझे लाला भूखा है, माँ समझी उठी दतूसर है।
पर उसके मनमें थी और बात, जो इस नाटक का नटवर है ॥
जिस पग से गंगा निकली है, जो पग लक्ष्मी का सर्वस है।
देखूँ तो उसे चूसकर मैं, क्या स्वाद और कितना रस है ॥
पृथ्वी काँप सागर उछला, घनघोर घिर उठा नभ पर है।
क्या सचमुच आज प्रलय दिन है, अंगुष्ठ चूसता जगधर है ॥
खलबली प्रकृति में यों निहार, झटपट मुस्करा हँसोड दिया।
माता का दूध लगा पीने, अंगुष्ठ पाँव का छोड़ दिया ॥

अन्नप्राशन का हुआ, छठे मास संस्कार।
घर घर में तसमई की, थी उस दिन ज्योनार॥
घुटुओं, फिर पैरों चले, जब गोकुल के चन्द।
नन्द भवन तब हो गया, मूर्तिमान् आनन्द॥

घुटुओं चलने के अवसर की—यह लीला हृदय लुभाती है।
जब नन्द टेरते हैं इनको, माँ अपनी तरफ बुलाती है॥
यह कहते—मेरा लाला है, वह कहती मेरा छौना है।
जिसका सब जगत् खिलौना है, वह इनके लिए खिलौना है॥
जब उँगली के बल चलते हैं, तो मातु बलैयाँ लेती है।
थक जाते कुँवर कन्हैया हैं, तो तुरत कन्हैया लेती है॥
बलि-द्वारे तीन पगों ही में, नापा था जिसने पृथ्वी को।
माता के बिना सहारे यहाँ, वह लाँघ न सकता ड्योढ़ी को॥
शोभित इस भाँति दतूसर थी, जनु बसी कमल पर सीपी हो।
हँसते थे यों मानों-शशि पर, बिजली की रेला चमकी हो॥
कौंधनी, पैंजनी, कटि, पग में, हाथों में सुघर कड़ूले थे।
गोरोचन का था भाल तिलक, सिर के सब बाल झड़ूले थे॥
उस सिर पर कई रंगवाला, टोपा यों शोभा पाता था।
मानों—बादल में इन्द्र धनुष, उठ उठकर छटा दिखाता था॥
माखन से सराबोर आगन, गोकुल की शान बढ़ाता था।
कोतल तन धूलि—धूसरित हो, धरणी का मान बढ़ता था॥

नन्द से बाबा माँ से मैया, कहते थे जब तुतला करके।
बलिहारी तब विश्वम्भर पर, होते थे हृदय विश्व भरके॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

शोभित कर नवनीत लिए।
घुटुउन चलत, रेणु-तनु, मंडित मुख दधि लेप किए॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।
लट-लटकनि मनोभ्रम मधुपगन मादक मदहिं पिए॥
कठुला कंठ, बज्र केहरि-नख राजत रुचिर हिए।
धन्य 'सूर'-एको पल या सुख का सत कल्प जिए॥

(सूरसागर से)

—०:: ❀ ::०—

एक रोज माँ से कहा-"चन्द्र खिलौना लाउ।
इस पेड़े में—स्वाद है, कैसा मुझे चखाउ॥

थाली में नीर भरा माँ ने, उसमें प्रतिबिम्ब चन्द का था।
लाला ने उसे पकड़ने को-डाला जब हाथ-वहाँ क्या था॥
रोपड़े-"इसी को लूँगा मैं", चुप होते नहीं नन्द-नन्दन।
पलने पर लगी सुलाने माँ, तो सोते नहीं नन्द-नन्दन॥
उस सुघर सलोने मुख पर यों, अलकों का जाल सुहाया था।
मानो-सोते पर सहसानन, रक्षा करने को आया था॥
कुछ सोये, फिर कुछ चौंक पड़े, कुछ था जो आँख न लगती थी।
तब राई लोन मिर्च हल्दी, सरसों से नजर उतरती थी॥
थपकी दे देकर माँ बोली-अब मत रोओ, चुप हो जाओ।
मैं एक कहानी कहती हूँ, वह सुनते सुनते सो जाओ॥"

लेकर के नाम कहानी का, इतिहास सुनाती थी मैया !
त्रेतायुग का श्रीरामचरित, इस भाँति सिखाती थी मैया ॥
उन दिनों, बालकों को योंही, इतिहास सिखाया जाता था ।
बचपन ही में माँ के द्वारा, यह विषय रटाया जाता था ॥

अस्तु, यशोदा ने कहा—'सुनो, कन्हैयालाल ।
त्रेतायुग में, अवध के थे, दशरथ महिपाल ॥

श्रीराम लषण, शत्रुघ्न भरत, थे चार पुत्र दशरथजी के ।
वे चारों बड़े प्रतापी थे, अवतारी समझो पृथ्वी के ॥
श्रीरामचन्द्र ने, मिथिला में, जीता संग्राम स्वयंवर का ।
मैथिली सिया को प्राप्त किया, को दण्ड खण्ड कर शंकर का ॥
कुछ दिनों बाद, फिर मिला इन्हें, बनवास चतुर्दश वरसों का ।
सौतेली माता के द्वारा, बरसा यह बादल दुःखों का ॥
उस समय सिया भी संग चली, श्रीलखन भ्रात भी साथ हुए ।
होने को थे जो अवधनाथ, वे वन जीवों के नाथ हुए ॥
तीनों ने वन वन में फिरकर, जब पंचवटी में वास किया ।
तब बुरे दिनों के चक्कर ने, उतने सुख का भी ह्रास किया ॥
लङ्का के राजा रावण ने, जोगी का रूप बना करके ।
सीता माता का हरण किया, सूनी कुटिया पर जा करके ॥"

और न आगे कह सकीं, मातु यशोदा हाल ।
चौंक पड़ा बस यहीं पर, सोते से वह लाल ॥

"लक्ष्मण, लाओ तो अभी, मेरा तीर कमान।
करना है लंकेश का, चूर्ण मुझे अभिमान॥"
मातु डरी, यह क्या हुआ, किए अनेक उपाय।
बड़ी देर–तब कहीं–सोये फिर ब्रजराय॥
इस प्रकार जब निशि गई, होने लगा विहान।
तभी मातु गाने लगी, मृदुल प्रभाती–गान॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

जागो–जागो कृष्ण कुँवर, भोर होन आयो।
अरुणशिखा कान खात, पक्षीगण चहचहात॥
खिरकन में गौ रँभात, प्रात कुहर छायो।
कमलन पर भ्रमर धाये, यमुना पर भक्त धाये॥
खेतन पर कृषक धाये, तम पर रवि धायो॥

—:: * ::—

प्रकृति जगी, जल थल जगे, जाग उठा संसार।
जगते ही गोपाल के, जागा जग परिवार॥
प्रात–कलेऊ के लिए, माँ दौड़ी तत्काल।
माखन रोटी दे–कहा, जीमो मेरे लाल॥"

कुछ हँसकर कहा कन्हैया ने, जितना हो सब आगे धरदे।
जल्दी से माखन खिला खिला, मैया तू मुझे बड़ा करदे॥
मैया सब माखन लाई तो, लाला ने टेरा ग्वालों को।
क्षणभर में सभी खिला डाला, उन साथ खेलने वालों को॥

जब घर का माखन खत्म हुआ, तो पास पड़ोस नजर डाली।
अपना ही माल समझकर—वह मटकी भी खाली कर डाली॥
गोपियाँ प्रेम में पगी हुई, खुद माखन इन्हें खिलाती थीं।
कहती थीं जरा नाच तो दो", माखन पर नाच नचाती थीं॥
गोकुल क्या त्रिभुवन मंडल तक, इन लीलाओं पर वारी था।
सुरदल निहार यह बाल-चरित,यह कह कहकर बलिहारी था—

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

"कान्हा, तनिक दही के कारन।
तनिक दही के कारन, कान्हा नाँचत नाच हजारन॥
नन्दराय की गौशाला में, बँधी हैं गोएँ लाखन।
तुम्हें पराई ही मटुकी को, लागत है प्रिय माखन॥

—:: ❀ ::—

इस प्रकार कुछ दिनों में, वे ब्रज—राज--किशोर।
कहलायें चितचोर से, घर—घर माखन चोर॥

दर्पण के सम्मुख एक दिवस, माखन जब खाते थे मोहन।
प्रतिबिम्ब देखकर के अपना, मुस्काते जाते थे मोहन॥
कहते थे उससे—"तू भी ले--ले तू भी तू भी खा भैया!
मैं नहीं अकेला खाता हूँ, इस कारण हाथ बढ़ा भैया!!
फिर एक दिवस माँ बिलोरही थी, माखन पहुँचा उत्साही।
ली पकड़ मथानी दे माखन—जितना है दे-दे उतना ही॥

जब हरि ने गही मथानी वह, तो नभ पृथ्वी सब अकुलाये।
संसार काँप उट्ठा कि कहीं, संसार न मन्थन हो जाये॥
आखिर कुछ माखन लेकर ही, यह खेल समाप्त किया हरि ने।
इस भाँति नित नई लीलाकर, भक्तों को मोह लिया हरि ने॥
होता था सुबह कलेऊ नित, दोपहर रसोंई होती थी।
फिर संझा को ब्यालू करके, वह सखा मण्डली सोती थी॥
ब्यालू के समय एक सन्ध्या, लाला ने लाल मिर्च खाली।
हुचकी आई आँसू निकले, कोमल मुख पर छाई लाली॥
नन्दजी ने कहा गरजकर तब—जब मिर्च न इस घर में आये।
मिष्ठान्न मधुर प्रिय भोजन ही, लालाको नित्य दिया जाये॥
तब बोले आप खिलाओ माँ, नित लालन को माखन मिश्री।
भोजन में—सबसे अच्छा है—इस मोहन को माखन मिश्री॥
अगले दिन खूब मधुर मीठे, पकवान बनाये माता ने।
ठाकुर का भोग लगाने को, विधि सहित सजाये माता ने॥
ब्रह्मार्पण कहकर नेत्र मूँद, माता जब भोग लगाती थी।
तो मनमोहन के हँसने की, आवाज कान में आती थी॥
बहुतेरा ध्यान लगाया पर, कब ध्यान वहाँ लग पाता था।
जब आँख खुली तो गोदी का, ठाकुर वह भोग लगाता था॥

इस प्रकार देते हुए, सबको नित आनन्द।
पाँच वर्ष के हो गये, ब्रजवल्लभ ब्रजचन्द॥

तब माँ बोली एक दिन—छोड़ो मेरा दूध।
पाँच वर्ष तक पी चुके, तुम बहुतेरा दूध॥
तुम्हें इस तरह देखकर, हँसते हैं सब ग्वाल—
अब तक—"माँ का छोड़ता, दूध नहीं गोपाल॥"
मन ही मन में उस समय—विहँसे करुणासींव।
'माता, यह ही दूध तो, है जीवन की नींव॥
जितना इसके दान में, होगा माँ औदार्य!
उतना ही शिशु करेगा, दुष्ट—दलन का कार्य॥"

लेकर के साथ सखाओं को, जब दूर खेलने जाते थे।
भोली माता के प्राण तभी—उस अवसर पर—अकुलाते थे॥
कहती थी माँ—"मत जाउ दूर, इस बन में हाऊ आये हैं।
मालूम नहीं है तुम्हें—कौन, अपने हैं, कौन पराये हैं॥
मन ही मन फिर मुस्काकर के, कहता था वह—जगदारी।
बलि छला दशानन को मारा, तब मिला न हाऊ महतारी॥
आखिर माता, ने एक रोज, लाला को ऊखल से बाँधा।
उस बन्धन-मुक्त विश्वपति को, बस रस्सी के बल से बाँधा॥
कारण यह था—गोपीदल ने, रच दिया स्वाँग करजोरी का।
वह दल उलहना लाया था, मोहन की माखन चोरी का॥
पर वहाँ और ही लीला थी, हरि ने कुछ और ही ठाना था।
नलकूबर मणिग्रीव का यों, सुर-पद पर फिर पहुँचाना था॥

ऊखल घसीटते हुए आप, जुड़वाँ वृक्षों तक घिसट गए।
नारद का वचन सत्य करने, उन 'यमुलार्जुन के निकट गए॥
ऊखल अटका जब वृक्षों से, तो तुरत वृक्ष वह टूट गए।
यह रस्सी के बल से छूटे, वह देव शाप से छूट गये॥

माटी खाली एक दिन, दौड़ी माँ तत्काल।
बोली—"क्यों उत्पात तू, करता है गोपाल?"
कहा आपने-"क्या हुआ!, इसमें तो है स्वाद।
सोंधा-सोंधा भूमि का, है यह प्रेम—प्रसाद॥

तुम जिसको माटी कहती हो, वह मुझे प्राण से प्यारी है।
इस माटी ही में लोट-पोट, बनना मुझको असुरारी है॥
शिशुपन की आयु इसी माटी के, हित तो मैंने काटी है।
मैया यह ब्रज की माटी है, यह जन्म भूमि की माटी है॥"

माँ बोली "उपदेश के, बहुत सुन चुकी बोल।
कितनी खाई है, जरा मुँह तो अपना खोल॥
मुँह खोला जब लाल ने, काँपी माँ तत्काल!
देख अगणित वहाँ पर, नभ, पृथ्वी, पाताल॥
नन्द-यशोदा थे बहुत, बहुत गोपियाँ-ग्वाल।
फिर वह देखा वहीं पर, हैं-असख्य नन्दलाल॥
इतने में हरि हँस दिए, माँ भी हँसी तुरन्त।
नभ-वीणा पर स्वर तभी, गूँजा 'जय-श्रीकन्त॥

❀ इति ❀

—०:: ❀ ::०—

नोट—इससे आगे की कथा "कमलीवाला कन्हैया" नामक पुस्तक में पढ़िये।

❀ ॐ ❀

❀ प्रार्थना ❀

—०:: ❀ ::०—

भारत के प्राणाधार हो तुम—
श्रीकृष्ण ! तुम्हारी जय होवे ॥
इस नैया के पतवार हो तुम—
श्रीकृष्ण ! तुम्हारी जय होवे ॥
वंशी तुम कभी बजाते हो,
गीता तुम कभी सुनाते हो,
इस पार हो तुम, उस पार हो तुम—
श्रीकृष्ण तुम्हारी जय होवे—
आ जाओ फिर ब्रजमण्डल में,
गोपाल बनो फिर गोकुल में,
उजड़े घर के शृङ्गार हो तुम—
श्रीकृष्ण ! तुम्हारी जय होवे ॥

—०:: ❀ ::०—

ॐ

कमलीवाला कहैन्या

कथा प्रारम्भ

—:: * ::—

प्रथम प्रहर था दिवस का, बादल पर थी घाम।
कदम-तले–यमुना–निकट, खड़े हुए थे श्याम॥

गोपाललाल के आस-पास–गौओं का झुण्ड सुशोभित था।
या–कमलीवाले के समीप, उसका परिवार उपस्थित था॥
शिर पर था तिर्छा मोरमुकुट, कर, लकुटी, कमर काछनी थी।
मुरलीवाले मनमोहन की, यह बाँकी अदा गजब की थी॥

कुछ ही हटकर, घाट पर, भरे हुए अनुराग–
नारद मुनि गा रहे थे–वीणा पर यह राग॥

❀ गाना ❀

"जिनकी दुनियाँ के मनम में नहीं आते देखा।
हमने गोकुल में उन्हें गाय चराते देखा॥
हद नहीं पाते हैं–अनहद में भी योगी जिनको।
तीर यमुना के उन्हें––वंशी बजाते देखा॥
जिनकी माया ने चराचर को नचा रक्खा है।
गोपियों में उन्हें खुद नाचते–गाते देखा॥
जो रमा के हैं रमण विश्व के पति 'राधेश्याम।
ब्रज में आके उन्हें माखन को चुराते देखा॥"

—०:: ❀ ::०—

धीरे–धीरे उस तरफ, पहुँच गया चितचोर।
भक्त नहीं, भगवान् ही, गया भक्त की ओर॥

आत्मा-परमात्मा का मिलाप, कितना मीठा है–सुखकर है।
अपने से अपने का मिलना, कैसा प्यारा है सुन्दर है॥
इस रस को वही जानते हैं, जो इस रस के मतवाले हैं।
यह अनुभववालों का सुख है, समझें–जो अनुभववाले हैं॥

वंशीवाले ने कहा–जब–"देवर्षि प्रणाम!"
ब्रह्मपुत्र तत्काल ही, बोले–"जय घनश्याम!!"

फिर कहने लगे प्रेमपूर्वक–"कहिए अब क्या इच्छायें हैं?
रामावतार से क्या विशेष—करनी अबके लीलायें हैं?

वह तारक नाम बने पारक, अबके यह बानक बन जाये।
मर्यादा पुरुषोत्तम–स्वरूप–लीला–पुरुषोत्तम भी कहलाये॥
पृथ्वी की पीड़ा–पृथ्वीपति ! इस बार पूर्ण हरके जाना।
दुःखों में पड़े प्राणियों को, सम्पूर्ण सुखी करके जाना॥'

मन्द-मन्द कुछ मुसकरा, बोल उठा वह रूप।
"शीत न हो तो किसी को, लगे न प्यारी धूप॥"

सुख और दुःख दोनों ही का, सम्बन्ध परस्पर निर्भर है।
सुख का अस्तित्व दुःख पर है, अस्तित्व दुःख का सुख पर है॥
इस मृत्युलोक में जो आत्मा, आती या भेजी जाती है।
सुख और दुःख दोनों ही को, वह भोगने आती है॥
इसलिए असम्भव है यह तो, परिवर्तित सारा क्रम होवे।
हाँ, यह हो सकता है–नर को सुख और सब 'सम' होवे॥
इसलिए प्रेम-वंशी द्वारा–सोतों को प्रथम जगाऊँगा।
फिर उनके लिए ज्ञान-गीता, जाते-जाते दे जाऊँगा॥"

खिला दिया रवि किरण ने, जभी हृदय-अरविन्द।
नाच उठे नारद तभी, बोले–'जय गोविन्द !'

सब जगह व्याप्त है अग्नि किन्तु, उत्पन्न रगड़ पर होती है।
तुम भी अवतीर्ण तभी होते, जब भक्त मण्डली रोती है॥
लीला है अगम तुम्हारी हरि !, सचमुच लीला-अवतारी हो।
तुमको है वही जान सकता, जिस पर बस कृपा तुम्हारी हो॥

❀ गाना ❀

थके हैं लाखों ही ज्ञानी ध्यानी, न तुमको अब तक निहार पाया।
अपार माया तुम्हारी भगवन् ? कभी किसी ने न पार पाया॥
किसी ने वन-वन की खाक छानी, किसी ने पूजे हैं आग-पानी।
वहाँ पै जिस रूप में रमे तुम, न किसी ने विचार पाया॥
किसी ने माला में उम्र खोई, फिरा है काशी-गया में कोई।
समस्त तारों में स्वर तुम्हारा, तुम्हारा लेकिन, न पार पाया॥"

—०:: ❀ ::०—

वीणावाला कह चला, कह—"जय दयानिधान !"
वंशीवाले ने तभी, ली वंशी में तान॥

उस वंशी ने जड़ होकर भी, चेतन से बाजी मारी थी।
पौरी थी सिर्फ बाँस की पर, बोली मनुष्य से प्यारी थी॥
उसमें भी मानव के समान—पाँचों ही तत्व समाये थे।
मानव पै दश इन्द्रियाँ हैं तो—उसमें स्वर सात सुहाये थे॥
फिर भी मानव से उसको ही, ऊँचा क्यों हम ठहराते हैं ?
मानव-समाज यदि क्षमा करे, तो इसका भेद बताते हैं॥
मानव तो सदा बोलता है, ईर्षा और स्वारथ की बोली।
लेकिन वह बोला करती थी, प्रेम और परमारथ की बोली॥

उसी माधुरी की हुई—जभी सुधा झंकार।
पत्ते-पत्ते पर हुआ—नव जीवन संचार॥

यह कथा उन दिनों की है, जब गोचारण था नित कानन में।
बस गोकुल से आकर, नन्दादिक सब वृन्दावन में॥
गोकुल में थे उत्पात नित्य, वृन्दावन शान्ति-निकेतन था।
भय वहाँ कंस राजा का था, स्वच्छन्द यहाँ कुछ जीवन था॥

वृन्दावन का आज भी, इसलिए है नाम।
गोकुल फिर भी ग्राम था, वृन्दावन है धाम॥

गोलोकधाम से भी ऊँची, पदवी इसको दी जाती है।
कारण लीला-पुरुषोत्तम की, यह लीलाभूमि कहाती है॥
जब तीर्थराज में यज्ञ हुआ, सब तीर्थ वहाँ पर आये थे।
आमन्त्रण पर भी-वृन्दावन, उस अवसर पहुँच न पाये थे॥
सम्मुख तब श्रीनारायण के-उस दिन यह प्रश्न महान हुआ।
फरियादी तीर्थराज बोला-"हे प्रभु! मेरा अपमान हुआ॥"
हरि ने तब कहा-"प्रयाग सुनो, इच्छुक यदि तुम उत्तर के हो।
तुम राजा सब तीर्थों के हो, या राजा मेरे घर के हो?
वृन्दावन जिसको कहते हैं, वास्तव में मेरा घर वह है।
गोलोकधाम से भी बढ़कर, मुझको वह धाम भूमि पर है॥"

कहना यह है-बस उसी, वृन्दावन में आज।
बजा रहे थे बाँसुरी, श्रीवृन्दावनराज॥
प्रकट हो गई उस समय-एक मनोहर मूर्ति।
मानो-उस संगीत की-थी सजीव वह मूर्ति॥

वंशीधर ने देखा उसको, तो वह भी इन्हें निहार उठी।
वंशीधर जब बोले–"राधे !" तो वह भी 'श्याम !' पुकार उठी॥
श्रोताओ ! तुम्हें युगल छवि का दर्शन ही नहीं कराना है।
जो गुप्त बात उस समय हुई, वह आज प्रकट बतलाना है॥

बोले राधाकान्त यों,–"हे जीवन की क्रान्ति।
तुम इस मन ही की नहीं–आत्मा की हो शान्ति॥

ब्रह्मा ने तुम्हें देखकर ही, शायद चन्द्रमा बनाया है।
हो जाय समान तुम्हारे वह, इसलिए-खूब चमकाया है॥
पर उस कारीगर की, सब कारीगरी समाप्त हुई।
तुममें जो आभा आई है, वह नहीं चन्द्र को प्राप्त हुई॥
प्रति मास इसी धुन में रहता, है इसी आन पर अड़ा हुआ।
वह हारा कारीगर फिर भी, पीछे ही उसके पड़ा हुआ॥
इस मुख के चाँद बराबर ही, इतनी हठ नहीं छोड़ता है।
पन्द्रह दिन उसे तोड़ता है, पन्द्रह दिन उसे जोड़ता है॥"

उत्तर में वृषभानुजा, बोली–"हे शिर मौर।
तुम समझे कुछ और हो, मैं समझी कुछ और॥

यह सुघड़ साँवला मुख निहार, वह कारीगर चकराया है।
शायद, इसकी समता ही को, उसने भी मेघ बनाया है॥
पर समता जब होती ही, नहीं तो पानी–पानी होता है।
प्रतिवर्ष हार पर अपनी, वह चौमासा होकर रोया है॥

राधा की यह उक्ति, सुन बोले नन्दकुमार—
"निश्चय दोनों ओर है–एक प्रेम का तार ॥

उस अगम अथाह प्रेम की जब, शारद भी थाह न पाती थी।
तब यँही परस्पर गुण गाकर, गोते पर गोता खाती थी ॥
वास्तव में, 'राधेश्याम' एक, कहने को दो हैं बयनों में।
पुतलियाँ नहीं हैं श्याम-गौर, दोनों हैं दोनों नयनों में ॥
'मैं'–'तुम' में लय जब कर डाला, तो दूर हुई का नाता है।
'मैं'–तुम–में हूँ 'तुम' मुझमें हो, बस एक स्वरूप दिखाता है ॥
इस एक रूप का आराधन, आगे इस भाँति करेंगे जन।
'राधामाधव'—'राधामोहन'—'राधागोविन्द' जपेंगे जन ॥
उस जप में, उस आराधन में, इतना फिर भी हो जाएगा।
'राधा'–पद पहले आएगा, पश्चात् 'श्याम' पद आएगा ॥
गोलोक बिहारी इस जग में, आकर भी क्या कर सकता है ?
जबतक गोलोक-विहारिणि का, सहयोग नहीं पा सकता है ॥
प्रेमी भक्तों की नजरों में, तुम ब्रजवन की उजियाली हो।
कीरति–बृषभानुकुमारी हो, राधा बरसानेवाली हो ॥
ज्ञानी भक्तों की नजरों में, तुम नहीं गोप की ललना हो।
मोहन की प्रेम मूर्ति हो तुम, भावुक की प्रकट भावना हो ॥
जग नहीं निरख सकता है, गाँठ इस रिश्ते की, इस बन्धन की।
मालूम है यह तो मोहन को, तुम महाशक्ति हो मोहन की ॥
इस महाशक्ति ही के बल से, मैं महापुरुष कहलाऊँगा।
जग में जो करने आया हूँ–सचमुच वह करके जाऊँगा ॥

हे प्रेमरूपिणी ! प्रेममयी ! जग का भी कल्याण वही।
तुमसे जो प्रेम दान लूँगा, करदूँगा जग को दान वही॥"

अपने मनकी कह गए, जब इस भाँति अनन्त।
राधा ने दो शब्द में, उत्तर दिया तुरन्त॥

"तुम शक्ति मुझे ठहराओ, या ठहराओ महाशक्ति मुझको।
पर मैं कहती हूँ—तुम अपनी, समझो साक्षात् भक्ति मुझको॥
इस दृष्टि और इस नाते से, दाता ! मैं एक भिखारिनि हूँ।
तुम मेरे सदा देवता हो, और मैं सर्वदा पुजारिन हूँ॥"

इतना कह—फिर नयन से, रूपसुधा कर पान।
क्षणभर ही में हुई, वह मूरति अन्तर्ध्यान॥
सूने वन में रहगए, जब केवल गोपाल।
शुरू हुई यह रागिनी, वंशी में तत्काल॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

'राधा—राधा, धारा—धारा।
रोम-रोम में श्वास-श्वास में, रमा नाम यह प्यारा।
बादल के भीतर है जैसे—बिजली का उजियारा॥
सुरति-बिना देता न सुनाई—अनहद का इकतारा।
त्योंही "राधेश्याम" प्रकृति—बिन, पुरुष व्यर्थ बेचारा॥

इतने ही में हो गया, दृश्य और का और।
"वंशीवाले लाल की जय"—गूँजी उस ठौर॥
एक जहाँ था, वहाँ अब, थे अनेक गोपाल।
बलदाऊ को साथ ले, आए अगणित ग्वाल॥

श्रीदामा, देवप्रस्थ, अंशो, मनसुखा, वरूथप, ऋषभ, सुबल।
कवि नामगिनाए किन-किनका,जबथा विशाल अनगिनतीदल॥
काँधे पर सबके लकुटी थी, सब टेढ़ी पगड़ीवाले थे।
काछनी सभी थे कसे हुए, सब काली कमलीवाले थे॥
भक्त का चित्त चुराने का, दर्शन अति ही अनूप यह था।
या यों कहिए लीलामय का, प्रत्यक्ष विराटरूप यह था॥
ब्रजराज थे ब्रजचन्द्र, तो यह सना-सम ब्रज के तारे थे।
थे अंग एक ही तन के सब—जो नाममात्र को न्यारे थे॥
था नहीं बाल-दल, जत्था, सत् पर मर मिटनेवालों का।
अथवा ब्रज के उद्धार—हेतु, संगठन एक था ग्वालों का॥
या अत्याचार कंस नृप के, बदले की खातिर तन-तनकर।
अवतीर्ण हुए इस भाँति आज—ब्रजवन के ग्वाले बन-बनकर॥
यह लौकिक नहीं—पारलौकिक, इन बालसखाओं में बल था।
कारण—जगपति के साथ-साथ, जगमें यह प्रकट देवदल था॥

एक वेष था, एक ही, था सबका उपदेश।
एक जाति थी धर्म था एक, एक ही देश॥

सम्मुख इन सब स्वाधीनों के, यमुना थी, कदम-लतायें थीं।
बृन्दावन की हरियाली थी, और श्यामा गौरी गायें थीं॥
जो सुख था इन मैदानों में, आजादी के मतवालों को।
वह सुख वह मौज नसीब कहाँ ? महलों में रहने वालों को॥

ब्रजपति को कर मध्य में, बैठे सब स्वच्छन्द।
बोले—"अब वंशी बजे, तब आये आनन्द॥

तुम बजा रहे सूने बन में, किसलिए अकेले की वंशी ?
तब बात है बालसखाओं में, बोले अलबेले की वंशी॥
दिखलाते नहीं प्रेम जब तुम, तो हम वीरता दिखायेंगे।
तुम वंशी नहीं बजाओगे, तो हम लकुटियाँ बजायेंगे॥"

लगे बजाने बाँसुरी, हँसकर अब ब्रजलाल।
कहा मनसुख ने तभी—"ऐसे नहीं दयाल॥

औरों से पहले खुद सीखो—अपना सम्मान बड़े होकर।
हो पञ्च ग्वाल-टोली के तुम, इस कारण जरा खड़े होकर॥
छछिया भर छाछ पै घर-घर में, जा-जाकर नाच दिखाते हो।
उस समय नहीं शर्माते हो तो, अब तुम क्यों शर्माते हो ?"

यह सुनते ही, खड़े हो, बोले दयानिधान—
नेता जैसे—सभा में, देता है व्याख्यान—
"मित्रों ! तुमने बाँसुरी को, समझा है खेल।
पर यह जीवों के लिए, है जीवन ही बेल॥

समझेगा तब जग मानेगा—वंशी महान् सुखदाई है।
अबतक वह यही जानता है, यह ग्वालों की टलुआई है॥
संगीत जागता जादू है, जिसमें चिन्ता और खेद नहीं।
कहते हैं सभी महात्मा यों—स्वर में ईश्वर में भेद नहीं॥
ब्राह्मणगण प्राणायाम—कर्म, सन्ध्योपासन में करते हैं।
हम वंशीवाले वही क्रिया, वंशीवादन में करते हैं॥
जब इसमें फूँक लगाते हैं—तब श्वास उतरती-चढ़ती है।
जो देह-सहित जीवात्मा को, बलवान निरोगी करती है॥
अब समझ गए तुम वंशी को, मैं क्यों हर दिवस बजाता हूँ?
तुमको संगीत सुनाता हूँ, निज को बलवान् बनाता हूँ॥"

श्रीदामा कहने लगा—"सच है ब्रज के राउ।
भाषण पूरा हो गया, अब बाँसुरी बजाउ॥

वंशी वाले की होती है—वंशी से प्राणायाम—क्रिया—
तो श्रोताओं की भी होगी, सच्ची समाधि विश्राम—क्रिया॥
इसलिए बजाओ तुम वंशी, हम सुन-सुनकर सुख पायेंगे।
तुम प्राणायाम करो अपना, हम शान्ति-समाधि लगायेंगे॥

सचमुच थी उस बाँसुरी, में ऐसी ही लाग।
बजते ही सारा विपिन, गया एकदम जाग॥
गायें जो चर रहीं थीं, इधर—उधर को घास।
खड़ी हो गई आनकर, वंशीधर के पास॥

कुछ क्षण तक बाँसुरी में, बजी एक ही तान।
ग्वालों में आनन्द था—ब्रह्मानन्द समान॥
छिड़ी दूसरी तान जब, नाच उठे तब ग्वाल।
बजा-बजाकर तालियाँ—गाते थे तब ग्वाल॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

"मुरली बाज रही-ब्रज-बन में, बरसे रस चौदहों भुवन में।
बाजीगर ज्यों खेल दिखावे, डोरी पें पुतलियाँ नचावे,
बिजली की धारा-सी बहती-त्योंही जड़-चेतन में॥
एक दूसरे को नहीं जाने, अपने में आपी सुख मानें।
"राधेश्याम" नशा वह छाया—प्राण-प्राण तन तन में॥

—:: * ::—

बड़ी देर तक इस तरह, रहा खूब रसरंग।
तब श्रीयुत-मनसुखा ने, छेड़ा और प्रसंग॥
"दादी सब भाती नहीं, हमको यह अल्सेट।
उधर बजरही बाँसुरी, इधर बजरहा पेट॥

रस की दौलत तो बरस रही, पर अपने को यह खोटी है।
'सा-रे-गा—गा-सा-रे' क्या हो? जब नहीं पेट में रोटी है?
तुम कहोगे—'वह जीवन ही क्या? जिसमें खयाल रोटी का है?'
मैं कहूँगा—'जीवन में सबसे, मुशिकल सवाल रोटी का है॥'
तुम कहोगे—'तो खालो रोटी, क्यों नाहक रार बढ़ाई है?'
मैं कहूँगा—'रात खा चुका था, फिर सुबह भूख लग आई है॥'

तुम कहोगे–'तू बड़पेटा है–जो इतना शोर मचाता है।'
मैं कहूँगा–'ब्रह्मा भूला है, जो उसने पेट बनाया है॥

—::※::—

❀ गाना ❀

विधना ! तूने जिस दिन संसार रचाया।
यह महाभूल हो गई कि पेट बनाया॥
पेटों की खातिर नर इतने गिर जाते—
राक्षस तक को अपना माँ–बाप बनाते॥
करते हैं अत्याचार दया नहिं लाते–
छोटे जीवों को–बड़े जीव नित खाते॥
दोषी हैं इसमें नहीं रंक और राया।
यह महाभूल हो गई कि पेट बनाया॥
रण हो या बन कब पेट और धरता है ?
उस समय शान्त होता है जब भरता है॥
इसकी खातिर बेमौत जीव मरता है।
अपराध जानकर भी प्राणी करता है॥
छाती में तूने दिल तो ठीक बिठाया।
यह महाभूल हो गई कि पेट बनाया॥"

—०::❀::०—

भाषण सुन मनसुखा का, हुई सभी की राय—
"अच्छा–पहले पेट की, ही पूजा हो जाय॥"

घर-घर से सभी गोप-बालक, माखन और रोटी लाये थे।
खायेंगे साथ कन्हैया के, ऐसी अभिलाष लगाये थे॥

पत्तों की एक बड़ी थाली, क्षणभर ही में तैयार हुई।
जीमने लगे सब साथ-साथ, ऐसी अभेद ज्योनार हुई॥

सुर तो क्या, ब्रह्मा तलक, चकरा गए तुरन्त!
"यह कैसा अखिलेश है? यह कैसा भगवन्त?

काली कमली ओढ़े फिरता, बन-बन में गाय चराता है?
ग्वालों के साथ बैठकर फिर, यों माखन-रोटी खाता है?
माना कि—अकेले खा लेना, है उदार जन का धर्म नहीं।
पर एक ही पत्तल में खाना, कहलाता उत्तम कर्म नहीं॥

मन ही मन कहने लगे—मुस्कराकर ब्रजराज।
"अभिनेता का हो गया, अभिनय पूरा आज॥

वह रूप और लीला ही क्या, जिसमें जग धोखा खाय नहीं?
जग तो क्या सहकारी तक को, पूरा विस्मृति हो जाय नहीं?
जो स्वजातीय है, भाई हैं, कैसे न उन्हें अपनाऊँ मैं?
अपमान जाति का है इसमें, जो इनके साथ न खाऊँ मैं॥"

शुक कहते हैं—"परीक्षित! है यह विषय महान।
इस चरित्र के तत्व को, समझें भक्त सुजान॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

प्रेम के वश हैं दयानिधान।
जाति-पाँति का वहाँ जिक्र क्या? प्रेम है जहाँ प्रधान॥
शबरी जूठे बेरों को दिया जिन्होंने मान।
ग्वालों के संग जीम रहे हैं आज वही भगवान॥"

प्रीतिभोज, वह था नहीं, गूँगेपन के साथ।
छेड़छाड़ का स्वाद भी, था भोजन के साथ॥

श्रीदामा बोला—भैया रे !, मनसुखा बड़ा उत्पाती है।
हर दिवस चुराता है माखन, इसकी यह टेव न जाती है॥
गोपियाँ नहाने जब जातीं, तब घर में यह घुस जाता है।
छींके पर रक्खी मटुकी का, सारा माखन खा लेता है॥"
मनसुखा बोल उट्ठा–"दादा, माखन जब हाथ आए अच्छा।
चोरी से या बरजोरी से—जैसे भी मिल जाए अच्छा॥
तुम कहोगे–'जग में बुरा पुरुष, कोई भी चोर समान नहीं।'
मैं कहूँगा–'भोजन की चोरी, जग में अपराध महान नहीं॥'
जब पतित-पावनी यमुना का, मीठा जल–जीवन सबका है–
तो गोमाता का माखन भी, किसलिए नहीं धन सबका है ?
माखन जिस दूध में रहता है, वह दूध घास से बनता है।
है घास सम्पदा पृथ्वी की, पृथ्वी पर सारी जनता है॥

इस पर भी मैं चोर तो, सब जग निज हित चोर।
'पेट-चोर' कोई अगर तो, कोई 'चित-चोर'॥

वे गोपी भी हैं चोर कि, जो बछड़ों से दूध चुराती हैं।
खुद तो सारा दुह लेती हैं, थोड़ा सा उन्हें पिलाती हैं॥
उससे भी पहले यह धारा, लग सकती है उन ग्वालों पर।
सोते रहते हैं सारे दिन—जो 'कामचोर' चौपालों पर॥

शम्भु सती से हृदय का, अपना भाव चुराँय !
फिर भी सत्य समाज में, चोर नहीं कहलाँय !!

राजागण नीति चुराते हैं, विद्या विद्वान चुराते हैं।
कविजन औरों की कविता का, नित भाव महान् चुराते हैं—
वक्ता तक जब श्रोताओं का, वाक्यों से चित्त चुराते हैं—
तो हम तो केवल माखन ही, इस उदर निमित्त चुराते हैं ॥

प्रकट कर चुका मनसुखा, जब यह महाविचार—
तब बोले—इस विषय पर, हँसकर नन्दकुमार ॥

"मित्रों ! माखन की चोरी में, निर्दोष मनसुखा भैया है।
इस चोरी का है चोर कोई, तो पहला चोर कन्हैया है ॥
मैं नहीं चाहता दूध दही, गौ माता का बेचा जाए।
मैं नहीं चाहता—मथुरा को, छकड़े भर-भर भेजा जाए ॥
मैं नहीं चाहता—गोपी—दल, मटुकियाँ लिए डोले ब्रज में।
मैं नहीं चाहता-ग्वालों को, नीचा कोई बोले ब्रज में ॥
लेकिन मैं जब समझाता हूँ—तो कोई ध्यान नहीं देता।
अपने इस कान्हा बालक के, रोने पर ध्यान नहीं देता ॥
लाचार घेरता हूँ जाकर, गोपीगण को मैं पनघट पर।
नित दान माँगता फिरता हूँ, वंशीवट पर यमुनातट पर ॥
फिर भी वे सुनती नहीं तो मैं—यों उनको दण्ड दिलाता हूँ।
चोरी से या बरजोरी से, सारा माखन लुटवाता हूँ ॥

मेरा स्वभाव ही ऐसा है, पहले समझाता हूँ सबको।
क्या उचित और क्या अनुचित है,यह ज्ञान कराता हूँ सबको॥
फिर भी कर्तव्य छोड़ने जो, उन पर मैं दया नहीं करता।
तत्काल दण्ड दे देता हूँ, क्षणभर को क्षमा नहीं करता॥

मुझे उसी दिन गोपियाँ, होकर बहुत उदास।
मुझे पकड़ कर ले गईं, माताजी के पास॥

फिर लगीं उलहना यों देने–'हे वीर! बरज इस लाला को।
यह ढीठ लँगर नित रोक गैल, छेड़े है हर ब्रजबाला को॥
यह कहकर मेरा हाथ जभी, मैया की ओर बढ़ाया था।
उस समय एक दिल्लगी हुई, जिसने सबको चकराया था॥
मैं तो था नहीं, जगह मेरी–उस गोपी का ही बेटा था।
वह शर्माई, मैया गरजी, मैं घर में ही बैठा हँसता था॥
मनसुखा सखा-द्वारा यों तो, यह खेल जरा-सा मेरा था।
पर उस ब्रज की बालओं को, बस यही दण्ड बहुतेरा था॥
तब से वे नहीं उलहना ले–मैया के आगे जाती हैं।
बिन माँगे माखन देती हैं, खुद घर में बुला खिलाती हैं॥

और एक दिन ग्वालिनी, मिलीं बड़े ही भोर।
माखन लेजा रही थी, मथुरा जी की ओर॥

मैं राह रोककर बोल उठा–"पालन कर्तव्य किए जाओ।
अब हम इस ब्रज के राजा हैं, गोरस का दान दिए जाओ॥"

वे बोली—'झगड़ी नहीं बहुत, नन्दजू के लाल कहाकरके।
फरियाद करेंगी इसी समय, हम कंसराय से जाकरके' ॥,
मैं बोला-'कंसराय का तुम--क्यों नाम बीच में लाती हो ?
यह नन्दलाल ब्रजलाल है अब, यह बात भूल क्यों जाती हो ?
गोपियो ! दानलीला मेरी है, उसी कंस के जीवन तक।
फिर दुर्लभ होंगे तुम सबको, इस नन्दराय के दर्शन तक ॥
इतना करने पर भी न दिया, जब दान किसी ब्रजवाला ने--
तब इसी मनसुखा को पुकार, दे दिया दण्ड नन्दलाला ने ॥
लकुटी जब मटुकी पर खटकी, हो गई विजय नागरनट की।
घट-घट की वस्तु भूमि पटका, खुलगई आँख तब घटपट की ॥"

ब्रजपति की यह कथा, सुन हँसे सभी ब्रजग्वाल।
इस प्रकार गाने लगे—फिर दे-देकर ताल ॥

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

हम सृष्टि रचाया करते हैं, हम प्रलय मचाया करते हैं।
हम प्रातःकाल हाथ में ले, सन्ध्या से लड़ाया करते हैं ॥
अन्यायी का यमदूत हैं, हम न्यायी को देवदूत हैं हम।
हम नरक नसाया करते हैं, हम स्वर्ग बनाया करते हैं ॥
मथुरा का मान मिटाते हैं, गोकुल की शान बढ़ाते हैं।
आकाश गिराया करते हैं, पाताल उठाया करते हैं ॥"

—:: ❀ ::—

कहना यह है–इस तरह–था नित नया प्रमोद।
शोभित भी लाड़िलों से, ब्रज जननी की गोद॥
इन्हीं दिनों की बात है–हे अभिमन्यु कुमार।
किया अघासुर दैत्य का, ब्रजपति ने संहार॥

आश्चर्य उधर सुरमण्डल में, दिन पर दिन बढ़ता जाता था।
ब्रह्मा ने बहुतेरा सोचा, पर नहीं समझ में आता था॥
फिर-फिर वह ही शंका होती–"यह कैसा जग का त्राता है?
मटुकियाँ तोड़ता फिरता है, दधि-माखन नित्य चुराता है॥"

आखिर जब मस्तिष्क में, संशय बढ़े अपार।
हुए परीक्षा के लिए—चतुरानन तैयार॥
ब्रह्मलोक से चल दिए, निश्चय कर यह राय।
"स्वयं करूँगा आज मैं, सत्य-झूठ का न्याय॥
इधर ग्वालदल कर रहा–था वह ही आनन्द।
बजारहे थे बाँसुरी–उसी तरह ब्रजचन्द॥
श्रीदामा का प्रश्न था, हे–"ब्रजपति ब्रजराज!
व्याख्या माता-शब्द की, कुछ सुनाइये आज॥

कहते हैं आप गाय को माँ, यह नहीं समझ में आता है।
मानव का पशुओं तक से क्या, मैया बेटे का नाता है?
अब तलक एक ही माँ को हम, माँ कहकर आनन्द लेते हैं।
उत्पन्न किया जिसने हमको, उसको ही आदर देते हैं॥"

ब्रजपति बोले–ठीक है—उससे करना नेह।
पहली माता है वही—निश्चय निःसन्देह ॥

नव मास कोख में रखकर जो, देती सन्तान जगत् को है।
उस माता पर सच्चा ही है, जितना अभिमान जगत् को है॥
जीवन भर उसकी सेवा का, ऋण चुका नहीं सकते हैं हम।
जब सम्मुख वह आ जाती है, चरणों में झुक पड़ते हैं हम॥

उस जननी उस धात्री, उस माँ के पश्चात।
आर्य जगत् में और भी, माता है विख्यात॥

मैया की कोख छोड़कर हम, जिस गोद में पहले आते हैं।
जो धारण हमको करती है, हम जिसका आश्रय पाते हैं॥
है वही दूसरी माँ अपनी–वाणी जिसका, गुण गाती है।
जो 'स्वर्गादपि गरीयसी' है–जो 'जन्मभूमि' कहलाती है॥

करता हूँ अब तीसरी–माँ का सुयश बखान।
इसका भी कुछ कम नहीं–उन दोनों से मान॥

जो अपनी पहली माता है, जिस माँ से जन्म लिया हमने–
दो-चार बरस तक ही उसकी, छाती का दूध पिया हमने॥
लेकिन जीवन भर दूध पिला, रखती जो हमसे नाता है।
तीसरी वही माता अपनी–हे मित्रो! यह गोमाता है॥
माना कि जानवर और भी, कुछ दूधोंवाले दिखलाते हैं।
लेकिन जो गुण गो-दुग्ध में है, वह नहीं हम उनमें पाते हैं॥

यह आर्य जाति की महिमा है--कोरा अहसान न लेते हैं।
पहुँचाये लाभ जानवर भी, तो उसको आदर देते हैं॥
इस जगह तुम्हारी शङ्का का, बस समाधान हो जाता है।
मानव का पशुओं तक से, यों मैया-बेटे का नाता है॥

वर्णन में रह गई है, अभी और दो बात।
उनको भी कहदूँ–तभी पूरी होगी बात॥

जिस माँ से नाता होने पर, होता है द्विज-संस्कार अपना।
जिसको अपनाकर गुरुकुल में, खुलता है विद्याद्वार अपना॥
जिससे ब्राह्मण ब्राह्मण बनता, क्षत्री हो जाता क्षत्री है।
हम लोगों की चौथी माता–हे भाई ! वह 'गायत्री' है॥

पञ्चम माता है बड़ी–करुणामयी उदार।
पहुँचाती इस पार से–है हमको उस पार॥

अपने आँचल में लेती है--जो खुद ही हाथ पसार हमें।
करती है जो भवसागर से, क्षणभर में ही उद्धार हमें॥
तप जिसके तट पर करने से--मिलता फल तुरत सौगुना है।
भाइयो ! मोक्षदाता अपनी, वह अन्तिम माता-'यमुना' है॥"

पूर्ण कर चुके इस तरह--भाषण जब गोपाल।
"जय जमुना मैया"--तभी बोल उठे सब ग्वाल॥
इस प्रकार गाते हुए--फिर सब गोप किशोर।
गौएँ चरतीं थीं जिधर--चले तुरत उस ओर॥

❀ गाना ❀

करो इनको नमस्कार, गऊ वाला है यह ।
आर्यजाति का उद्धार गऊ माता है यह ॥
देखो तो कितना यह उपकार किया करती है ।
घास खुद खाके हमें दूध दिया करती है ॥
खेती–बाड़ी का आधर गऊ माता है यह ॥१॥
देवता वास किया करते हैं इनके तनमें ।
वे भी गोलोक में मिलते हैं जो हैं त्रिभुवन में ॥
करती वैतरणी के पार गऊ माता है यह ॥२॥

—०:: ❀ ::०—

इतने में हो गया, अचरज एक महान ।
कुछ ग्वालों ने आ कहा–"यह क्या दयानिधान ॥

अपनी गउएँ अपने बछड़े–आते हैं नजर नहीं हमको ।
हम चारों और ढूँढ़ते हैं, वे मिलते नहीं कहीं हमको ॥
अब खुद जाओ और खोज करो, जिस जगह मिले ले जाओ तुम ।
वर्ना, उपदेश बन्द करदो, वंशी मत कभी बजाओ तुम ॥"

हँसकर माधव ने कहा—'इतने मत घबराउ ।
इन्हीं बनों में होयँगी, तुम्हीं ढूँढ़ने जाउ ॥"
चला गया वह दल तभी, समझ गये घनश्याम ।
'विष्णु परीक्षा' हेतु यह, ब्रह्मा का है काम ॥
भूल गए जब देवता, तक अपने को आज ।
खेल करेगा उन्हीं से, तब तो यह ब्रजराज ॥

इस ब्रजवासी की लीला पर, अचरज सब सुर समाज को है।
ब्रह्मा को है, शंकर को हैं, रतिपति को, देवराज को है॥
जब ऐसा है तो—इनसे भी, हँस लेगा वंशीवाला यह।
सबको थोड़ा थोड़ा परिचय, क्रमशः दे देगा ग्वाला यह॥
आनन्द तभी जड़वाद में है—चेतन-चर्चा भी चला करे।
व्यवहार रहे शारीरिक भी, आत्मिक लीला भी हुआ करे॥
वह देश, दिवस को, क्या जाने ? जिस जगह सदा ही रातें हैं।
संसारी समझ नहीं सकते—यह सूक्ष्म जगत की बातें हैं॥"

लीन हो रहे थे जभी, इस विचार में श्याम।
तभी सामने से वहाँ, आ पहुँचे बलराम॥

बोले—हे कान्हा, एक नहीं, दो दो आश्चर्य महान हुए।
गौएँ और उनके बछड़े क्या, ग्वाले तक अन्तर्ध्यान हुए॥
भाँडीर, भद्र, कुश, ताल, कुमुद, बहुला वन में गोवर्द्धन में।
वृन्दावन, मधुवन, नन्दग्राम, बरसाना और कामवन में॥
मैं स्वयं खोजकर आया हूँ, पर मिला किसी का पता नहीं।
तुम हो, मैं हूँ, मैं हूँ, तुम हो, बस और कोई दीखता नहीं॥

हँसकर मोहन ने कहा—"घबराहट बेकार।
तुम और मैं जब दीखते, तो फिर सब संसार॥
अभी मिलेंगे देखिए—इसी जगह एक—एक।
जब अनेक में एक है—तो है एक अनेक॥"

बलदाऊ ने जब देखा तो, सचमुच सन्मुख वही दल था।
वह ही गउएँ, वह ही बछड़े, वह ही गोपी का मण्डल था॥
आचश्र्य तीसरा हुआ इन्हें, क्या कला है यह? क्या कौशल है?
जादू है? मन्त्र? माया है?, विज्ञान है? या आत्मिक बल है?
फिर देखा–फिर, फिरकर देखा, तो कहीं न कुछ परिवर्तन है।
ग्वाले गौओं को चरा रहे, मुस्करा रहा मनमोहन है॥
सब बातें पहले ही की हैं, सब लीला पहले ही की है।
मुरलीवाले की उसी तरह, बजरही मोहनी मुरली है॥

समझगए बलरामजी, तुरत सब चमत्कार।
यह भी तो थे शेष के, आखिर को अवतार॥
उधर सूक्ष्म संसार पर, जय थी जब बेलाग।
तब वंशी गा रही थी, जग में ऐसा राग—

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

मानव लीला का यह भेद समझ में नहीं सहज आएगा।
कोई चक्रवर्ति–पद पाकर भिक्षुक फिर हो जाता।
जन्म भिखारी के ले कोई चक्रवर्ति पद पाता॥
कोई सुखी, किसी को खेद––समझ में नहीं सहज आएगा॥
जड़–चेतन की ग्रन्थि कठिन है, कौन इसे सुलझाए।
जो इसको सुलझाने जाए उलझ स्वयं ही जाए॥
यद्यपि गाते चारों बेद, समझ में नहीं सहज आएगा॥

—०:: ❀ ::०––

कहते हैं—इस रूप में, बीता पूरा साल।
गोचारण का कार्य ये, नित करते सब ग्वाल॥

सन्ध्या को घर पर आते थे, फिर सुबह बनों को जाते थे।
उन काली कमलीवाले की, मुरली सुन-सुन हर्षाते थे॥
सहभोज भी माखन रोटी का, बस उसी तरह पर होता था।
उपदेश भी ब्रज के राजा का, वैसा ही अक्सर होता था॥
छाया को भी न ख्याल हुआ, यह छाया है योगेश्वर की।
है स्वप्न प्रकृति की देवी का, यह माया है योगेश्वर की॥

चतुरानन हैरान थे—यह आश्चर्य निहार।
हरि-लीला के सिन्धु में, वही बुद्धि मँझधार॥

उस ओर चुराए हुए सभी, बछड़े और ग्वाल सुरक्षित हैं।
इस ओर कन्हैया के समीप, वैसे ही और उपस्थित हैं॥
दर्पण सन्मुख आने पर ज्यों—मूर्तियाँ दीखती हैं दो-दो—
त्यों आज प्रकृति के शीशे में, सृष्टियाँ दीखती हैं दो-दो॥
अथवा है एक बड़ा कमरा, दर्म्यान में जिसके पर्दा है।
दोनों रुख की दीवारों पर, कुछ चित्र-विचित्र बन रहा है॥
है एक ओर तो चित्रकार, जो चित्र अनेक बनाता है।
उस ओर विचित्रकार केवल, दीवार घोटता जाता है॥
बनते ही चित्र हटा पर्दा, अचारज उस चामत्कार पै था।
जो कुछ विचित्र दीवार पै था, वुह घुटी हुई दीवार पै था॥

यह सूक्ष्म-जगत् का अभिमानी, चतुरानन चक्कर में आया।
'यह असली है या वह असली ? यह माया है या वह माया ॥
नभ पर जो गेंद उछाली—वह सर पर वापिस होकर आई।
माया मायापति पर छोड़ी—तो अपने ही ऊपर आई ॥
आँखों को मूँदा और खोला—तो नया उजाला दीख पड़ा।
हर बछड़े में—हर ग्वाले में—वह कमलीवाला दीख पड़ा ॥
बैठे, फिर उट्ठे तो देखा, वंशी में है त्रिभुवन लाखों।
वंशीवाले की सेवा में—प्रस्तुत हैं चतुरानन लाखों ॥
इतने में अपने को देखा, तो पता नहीं पाया अपना।
हर रोम-रोम में अपने ही, घनश्याम दृष्टि आया अपना ॥

आत्मशक्ति की जब कभी, हो जाती है हानि—
डर में हारे हुए के, आती है जब ग्लानि—

तब प्रायः यह ही होता है, वह रह रहकर पछताता है।
संकोच भी इतना होता है—मुँह नहीं दिखाया जाता है ॥
इनका भी यही हाल हुआ, दिल अन्दर-अन्दर रोता था।
कमलीवाले के सन्मुख हों, यह नहीं हौसला होता था ॥

अपना ही पहचानता, है अपने का हाल।
ब्रह्मा की गति—विष्णु, ही ने जानी तत्काल ॥
खेल खत्म करना पड़ा, रखने को तब टेक।
या अनेक में एक जो, रहा वही फिर एक ॥

अवलोके यमुना-निकट, केवल जभी अनन्त।
'त्राहिमाम्'—कह चरण में, गिरे विरञ्चि तुरन्त॥

"मैं सृष्टि-रचयिता हूँ इसका, था गर्व मेरे उर-अन्तर में।
वह गर्व मिटाया है तुमने, हे गर्वप्रहारी ! क्षणभर में॥
जैसे ज्वाला की लपट कभी, ज्वाला को जला नहीं सकती।
तैसे ही नटवर की माया, नटवर को नचा नहीं सकती॥
आँखों पर अन्धा चश्मा था, समझा सब जगह अँधेरा है।
मैंने ली नहीं परीक्षा है, यह हुई परीक्षा मेरी है॥
सच तो यह है—भरमाया था—गोपाल ! तुम्हारी कमली ने।
दर्म्यान में पर्दा डाला था—ब्रजलाल ! तुम्हारी कमली ने॥
अब उतर गई आँधी शिर की, आँखों में करुणा का जल है।
आकाश उस तरफ उज्ज्वल है, और हृदय इस तरफ निर्मलहै॥"

इस प्रकार जब कहचुके—ब्रह्मा अपने वैन।
मन्द-मन्द कुछ मुस्करा—बोले करुणा-ऐन॥
"देते हैं क्यों दास को, इतना मान दयाल ?
आप जगत के पूज्य हैं—मैं हूँ ब्रज का ग्वाल॥

कमली ग्वालों का बाना है, इसलिए दास ने धारी है।
है नाज भी इस पर हमको, यह—कौमी पोशाक हमारी है॥
क्यों नहीं प्राण से प्यारी हो ? जब अपने दल की कमली है।
यह जन्मभूमि की कमली है, यह ब्रजमण्डल की कमली है॥

प्रत्येक देश को भाता है–अपना बाना, अपना कपड़ा।
इसलिए हमें भी प्यारा है, अपना खाना, अपना कपड़ा॥
कमली वह देशी कपड़ा है, रंगत भी जिसमें देशी है।
ताना भी इसमें देशी है, बाना भी इसमें देशी है॥
जातीय कर्म जो मेरा है, वह ही मैं प्रतिदिन करता हूँ।
कमली ओढ़े वृन्दावन में, गौओं के साथ विचरता हूँ॥
आश्चर्य की इसमें बड़ी बात–क्या करुणाधाम, कर रहा हूँ ?
तुम अपना काम कर रहे हो, मैं अपना काम कर रहा हूँ॥"

बोल उठे ब्रह्मा तभी–"अधिक न अब भरमाउ।
जान गया मैं आपकी, अब मत छुपो-छुपाउ॥

लीलाधर, लीला ग्वालों से, आधी या पौनी खेली है।
पर ब्रह्मा से पूरी तुमने—यह आँखमिचौनी खेली है॥
रामावतार में—परशुराम, ब्राह्मण का गर्व घटाया है।
कृष्णावतार में चतुरानन यों हार, शरण में आया है॥
हे नाथ, यही अब विनती है, निज दास बनाए ही रखिये।
मायापति, अपनी माया से—सब समय बचाए ही रखिये॥
उस ओर देखिये सब बछड़े, और ग्वाल आपके आते हैं।
'हम हुए हरण'–यह ध्यान नहीं, वैसे ही खुश दिखलाते हैं॥
अपने आधे क्षण के भ्रम की, मैं क्षमा चाहता हूँ भगवन्।
तुम भी आनन्द करो, मैं भी निज कृति में लगता हूँ भगवन्॥

इतना कह उस रूप का, प्रेमामृत कर पान।
नाच-नाच गाने लगे, चतुरानन यह गान—

❀ गाना ❀

दया की नजर हो जरा–कमलीवाले।
हमें है तेरा आसरा कमलीवाले!
किनारा है यमुना का आँखें ये मेरी––
उन्हीं में तू गोएँ चरा–कमलीवाले।
हृदयधाम मेरा है ब्रजधाम तेरा––
यहीं नृत्य मुरली बजा–कमलीवाले!
चुराना ही स्वीकार हो तुझको माखन––
तो इस मनका माखन चुरा–कमलीवाले!,
उठाया है गिरिराज को तूने नख से––
तो आँखों से मुझको उठा कमलीवाले॥"

—०:: ❀ ::०—

❀ गाना ❀

धनि यह बृन्दावन की रेनु।
नन्दकिशोर चरावत गैयाँ, मुखहिं बजावत बेनु।
मदनमोहन को ध्यान धरत जो पावत अति सुख चैनु।
चलत कहा मत बसति पुरातन–जहां लैन नहिं देनु॥
इहां रहौं जहँ जूठनि पावैं, ब्रजवासी के ऐनु।
'सूरदास झाँकी सरवरि नहिं–कल्पवृक्ष–सुरधेनु॥"

(सूरसागर)

❀ इति ❀

नोट—इससे आगे की कथा "गिरधरधारी" नामक पुस्तक में पढ़िये।

❁ प्रार्थना ❁

—०:: ❁ ::०—

भारत में फिर से आजा गिरवर उठानेवाले।
सोतों को फिर जगाजा, गीता के गानेवाले॥
गूँजा था जिससे मधुवन, नाचा था जिससे त्रिभुवन।
वह तान फिर सुनाजा, वंशी बजानेवाले॥
दुख-द्वन्द बढ़ रहे हैं, दुष्काल पड़ रहे हैं।
फिर कष्ट सब मिटाजा, गउएँ चराने वाले॥
हैं—"राधेश्याम" निर्बल, जन मेरे भक्तवत्सल।
बिगड़ी को फिर बनाजा, बिगड़ी बनानेवाले॥

—०:: ❁ ::०—

गिरवरधारी

—०:: ❀ ::०—

कथा प्रारम्भ

बोले श्रीमुनिनाथ फिर—"हे नरपति नरनाथ !
कंस कथा भी कुछ सुनो—कृष्ण-कथा के साथ ॥
चरित बाल गोपाल के हैं बहु भाँति अपार।
पर, वह मत भूलो—हुआ जिस कारण अवतार ॥

बन्दीगृह में रहने वाले—उन वन्दनीय वन्दीजन को—
हम भूले तो समझो भूले—श्रीकृष्ण-कथा के जीवन को ॥
सचमुच वसुदेव देवकी के आँसू ही प्राण कथा के हैं।
हमसे यदि पूछो तो वे ही उद्धारक इस वसुधा के हैं।

तपस्वियों का प्रति दिवस इधर मूक था जाप।
ब्रजपति का बढ़ रहा था—ब्रज में उधर प्रताप ॥
दो पाटों के बीच में फँसा हुआ था कंस।
फिर भी निज अभिमान में—था उन्मत्त नृशंस ॥

भेजा था प्रथम अघासुर को वत्सासुर और बकासुर को।
ब्रजचन्द के हाथों मरकर वे पहुँच चुके थे सुरपुर को ॥

फिर भी रह सका न मौन असुर उस समय धेनुकासुर भेजा।
बलदाऊ के बल ने जिसका—कर दिया चूर सब उर भेजा॥
फिर उस जाति के और असुर, इस तरह तालवन में तारे।
अगले पैरों को पकड़-पकड़, चक्कर दे देकर संहारे॥
राक्षस आते थे मरते थे, आँधी उठ-उठ मिट जाती थी।
वृंदावन की शान वही, कुछ कमी न उसमें आती थी॥

वास्तव में यह—असुरगण स्वयं दुखी थे आप।
प्रकटे थे इस जन्म में लेकर पहला पाप।

'वत्सासुर' पहले था 'प्रमील' करनी का यों सन्ताप—मिला।
नन्दिनी चुराने गया तभी 'बछड़ा' होने का शाप मिला॥
यह अर्थ निकलता है इससे—जो जग को हमें बताना है।
हैं जितने महापाप—उनमें अति भीषण 'गाय-चुराना' है॥
अब सुनो 'बकासुर' की करनी क्यों, कष्ट पड़ा इसके सर पर।
मछलियाँ मारता था पहले—यह 'उत्कल' गंगासार पर॥
जाजलिऋषि नेतब दिया शाप, 'ओ दुष्ट विचर बगुला होकर।
सारांश—कभी यह उचित नहीं—मछलियाँ मारना तीर्थों पर॥
श्रीअष्टावक्र महामुनि थे, जब उन्हें चिढ़ाया जंगल में।
तब दुष्ट 'अघासुर'-'अजगर' बन, भूभार हुआ भूमण्डल में॥
मतलब है यही पूर्वजों की दिल्लगी उड़ाना ठीक नहीं।
सन्तों को और साधुओं को—छेड़ना चिढ़ाना ठीक नहीं॥

'धेनुक'—बलिपुत्र 'साहसिक' था, पागल था वन-विहार में यह।
उचटी समाधि दुर्वासा की तो 'गर्दभ' था संसार में यह॥
तात्पर्य यही है कहने का—सभ्यता त्यागना अनुचित है।
पूजा यदि कोई करता हो तो विघ्न डालना अनुचित है॥

वृन्दावन में हो गया—आखिर को उद्धार।
इधर छुटे यह शाप से, उधर मिटा भूभार॥
मथुरा के नागरिकगण मनको कर निर्भ्रान्त।
नारद के उपदेश से देख रहे थे शान्त॥
कंसराय ने जब सुना—राक्षसदल का पात।
अट्टहास करके कहा—"साधारण है बात॥

अघ, बक, धेनुक और वत्स आदि कुछ खंभ नहीं थे इस दरके।
वे तो दो-चार जानवर थे—'मेरे शाही शाहीचिड़िघर' के॥
अबके 'प्रलम्ब' आदिक सच्चे रणमल्ल पठाये जायेंगे।
देखूंगा मतवाले ग्वाले--कब तक उत्पात मचायेंगे॥"

घटी नहीं थी पाप की मथुरा जी में बेल।
बन्द इधर भी थे नहीं वृन्दावन के खेल॥
गिरि-कलिन्द की नन्दिनी कालिन्दी के तीर।
कालियदह के घाट पर खेल रहे थे वीर॥
अलबेले मनचले सब ब्रज के गोपकिशोर।
फेंक रहे थे गेंद को एक-एक की ओर॥

उधर दूर पर वृक्ष के तले लगाकर ध्यान।
वीणाधारी गा रहे थे—अपना यह गान—

—::❀::—

❀ गाना ❀

खिलाड़ी खेल रहा है खेल।
गेंद सृष्टि के तुल्य सुहाती, हरि की माया जिसे नचाती॥
कभी आसुरी सत्ताओं पर कभी देव-शक्ति पै जाती।
हाथों ही हाथों में फिरती, अधिक न रखती मेल॥

—०::❀::०—

गेंद मनसुखा को अधिक देते थे गोपाल।
इस पर चिढ़ कहने लगा श्रीदामा तत्काल॥

"मनसुखा बहुत प्यारा है क्या? ऐसी हठ भैया, ठीक नहीं।
हैं सभी लाल ब्रजजननी के, यह भेद कन्हैया ठीक नहीं॥
उत्तर मनमोहन बोले—'हठ और भेद की बात नहीं।
क्यों इसे खिलाता हूँ ज्यादा, यह समझ सके तुम भ्रात नहीं॥
कल माखन बहुत खा गया यह, इसलिए खूब दौड़ता है।
बस इसी गेंद की गोली से रोगी का रोग मिटाना है॥
गोली यदि वैद्य खिलाते हैं तो हम यह गेंद खिलाते हैं।
खेल ही खेल में हँस-हँसकर बीमारी दूर भगाते हैं॥
बन्धुओं, हमारे पूर्वजगण—सचमुच उपकार कर गए हैं।
खेल और धर्म के पर्दों में चुपचाप सुधार कर गए हैं॥
वह गेंद और यह गोपालन, यमुना का नित्य नहाना यह।
व्रत करना ग्यारस—पूनों के घर घर तुलसियाँ लगाना यह॥

सच पूछो तो इन कार्यों में बूढ़ों की बड़ी चतुरता है।
मालूम नहीं होता हमको, और स्वास्थ्य हमारा बनता है॥

एक और भी प्रकट है—इन खेलों का काम।
पर्वों, कुम्भों, उत्सवों या मेलों का लाभ॥

एक ही जगह पर सब भाई, इस भाँति सम्मिलित होते हैं।
हो बड़ा विचार देश में कुछ—तो तुरत संगठित होते हैं॥
संगठन—बिना इस दुनियाँ में होता कोई सम्पन्न नहीं।
ईश्वर भी—बिना संगठन के करसका सृष्टि उत्पन्न नहीं॥

इसलिए इस खेल को तुम आदर्श बनाउ।
प्रश्न भेद का छोड़कर खेलो और खिलाउ॥"
ब्रजराई की युक्ति का ऐसा पड़ा प्रभाव।
श्रीदामा ने ले लिया वापिस निज प्रस्ताव॥
किन्तु मनसुखा को नहीं भाई यह तकरार।
बोल उठा वह बीच में लेकर बड़ी डकार॥

खेलेगा खेल गेंद का वह, जो गेंद-सदृश लड्डुआ खाये।
वह जैसा माशाराम नहीं, पापड़ में पेट अफर जाये॥
यह कहेंगे—'है मनसुखा मीत तो उसको ही तुम अपनाओ'।
मैं कहूँगा—हे व्रज के राजा अब तुम मेरे ही हो जाओ॥
व्रजपति बोले—"हो जाओ मौन ऐसा कहना भी अनुचित है।
मेरे तो सभी प्राण हो तुम, सबके हित में मेरा हित है॥

अच्छा, सँभलो हे श्रीदामा, अब पारी तुम सबकी आई।'
यह कहकर—गेंद उधर को ही नन्द के लाला ने पहुँचाई॥
पर रोक सका कोई न उसे वह कालियदह में जा पहुँची।
पहुँचे पहुँचा, इसके पहले तैरी फिर तह में जा पहुँची॥

इधर गेंद गोपाल से माँग रहे थे ग्वाल।
सोच रहे थे उस तरफ खड़े खड़े गोपाल॥

"हाँ इसी बहाने आज मुझे इस कालियदह में जाना है।
मद-मर्दन करके, कालिया को बस, रमणक-द्वीप' पठाना है॥
उसके विष से मेरे व्रज को नुक्सान नित्य ही होता है।
तो यहाँ हाथ भी धोता है, वह हाथ प्राण से धोता है॥

"अच्छा, वह ही गेंद मैं लाता हूँ अब हाल।
यह कहकर उस कुण्ड में कूदे व्रजगोपाल॥
व्याप उठा बस, उसी क्षण दल में हाहाकार।
'हाय! तुच्छ-सी गेंद पर खोया नन्द—कुमार'॥
बढ़े कूदने के लिए—सबके सब ग्वाल!
रोका तब बलराम ने बलपूर्वक तत्काल॥

श्रीदामा बोला—"बलदाऊ सचमुच निर्दय बड़े हो तुम।
खुद नहीं कूदते और हमें—यों रोके हुए खड़े हो तुम॥
भाई भाई के नाते में—रक्षा का कार्य बड़े का है।
छोटे के जब प्राणों पर हो तो यह और कार्य बड़े का है॥

बलदाऊ तत्क्षण बोल उठे–"श्रीदामा है यह बात नहीं।
तुम जैसा मुझे कह रहे हो, वैसा मैं दुर्बल भ्रात नहीं॥
वह नहीं बड़ा भाई हूँ मैं–जो बात बात में घबराए।
छोटे की छाती खुली देख, चिल्लाए हवा न लगजाए॥
न्हाते पर कहे–जुकाम न हो, खाते पर दृष्टि न खाय कहीं।
तुनका भी हाथों में हो तो–पोरा न हाय! दुख जाय कहीं॥
मैं वह हूँ–सिंह सामने हो तो—निर्भय भेजूँ भाई को।
आ जाय काल भी सम्मुख तो, कुश्ती लड़ने दूँ भाई को॥
घबराउ नहीं, विश्वास मुझे, कान्हा न विलम्ब लगाएगा।
कालिय पर अभी–विजय पाकर, जल के ऊपर आजाएगा॥

"अच्छा, वे आए नहीं–तब क्या होगा भ्रात?"
डरते-डरते कह गया—श्रीदामा यह बात॥

"तब क्या होगा?"–दाऊ बोले–"तब यह बलदाऊ जाएगा।
कालिय क्या, यम तक से लड़कर भाई को वापिस लाएगा॥
दो घड़ी तलक है इन्तजार फिर जल और थल कम्पाएँगे।
दाऊ के दोनों हाथों पर, दोनों जहान टकराएँगे॥"

इधर घाट पर जिस समय था वह शोक विषाद।
घर घर पहुँचा दिया था–ग्वालों ने सम्वाद॥
आए छाती फाड़ते बूढ़े बाबा नन्द।
"अरे कहाँ है? कहाँ है? ब्रजबल्लभ ब्रजचन्द॥

जब नहीं नैन का तारा है तो कैसे नैन जिएँगे यह ?
प्राणों का प्यारा नहीं रहा--तो किस पर प्राण रहेंगे यह ?
ईश्वर, तुम बड़े निर्दयी हो जो यह दुख दिया बुढ़ापे में ?
क्यों दिया ? जो गुल कर दिया-हाय देकर यह दिया बुढ़ापे में ?

सहन करूँ मैं किस तरह यह दारुण सन्ताप ?
इकलौता बेटा मरे और न रोए बाप ?

जितने भी दुःख जगत् में हैं, यह सब दुखों से भारी है।
जीते जी देह भस्म करदे--यह वह भीषण चिनगारी है ॥
कालियदह के भरघट पर अब देखेगाजग दोहरी चिता।
पहली जल के भीतर होगी, ऊपर जल के दूसरी चिता ॥"

यह कह महि पर गिर पड़े बूढ़े पिता अशान्त।
दाऊ नहीं सँभालते तो होता प्राणान्त ॥
इतने ही में आ गई--जसुदा करती--'हाय'।
बछड़ा खोकर जिस तरह डकराती हो गाय ॥

"बतलादो, अरे मुझे कोई, मेरी गोदी का लाल कहाँ।
मेरा मोहन, मेरा नन्दन, मेरा वह ब्रजगोपाल कहाँ ॥
माता के पहले लाल मरे ? यह नियम न मैं चलने दूँगी।
बूढ़ों के पहले--बच्चों की किस तरह चिता जला दूँगी ॥
जाती हूँ वरुणलोक को मैं, लाला को यहाँ पठाऊँगी।
अपने प्राणों को दे दूँगी, बदले में उसे बचाऊँगी ॥"

यह कह दौड़ी डूबने-बूढ़ी माँ तत्काल।
श्रीदामा ने उस समय-उसको लिया सँभाल॥
क्षण-प्रतिक्षण बढ़ रहा था-गोपी-गोप-समाज।
मानो-ब्रज कह रहा था--"कहाँ गए ब्रजराज?

ब्रजराज नहीं जग में हैं तो ब्रज में हमें काज फिर क्या?
घरवाला नहीं तो घर कैसा? राजा जब नहीं राज फिर क्या?
दिन है सूरज के साथ सदा, सूरज डूबा तो रजनी है।
बस इसी तरह ब्रजलाल-बिना सूनी यह ब्रज की जननी है॥
गोपों की तो गणना ही क्या, कोई भी नहीं जी सकेगा।
बछड़ा तक इस ब्रजमण्डल का, अब पानी नहीं पी सकेगा॥
वृक्षों के पत्ते सूख चले, पक्षी भी दीन हो रहे हैं।
मानो सबका बल क्षीण हुआ-सब शक्ति-विहीन हो रहे हैं॥
इसलिए आज ब्रज-जीवन का अन्तिम तट यह कालियदह है।
मानव क्या, पशुपक्षी तक का अब मरघट यह कालियदह है॥

इस प्रकार हो रहे थे--जब ब्रजगोप उदास।
वीणावाला महामुनि आया इनके पास॥
शब्द हुआ--'कर रहे हो--क्यों इतना सन्ताप?
सब पापों में है--बड़ा आत्मघात पाप॥

तैरना, लगा जाना गोता, यह महती कला कहाती है।
ग्वालों में पूर्ण नहीं है वह, हाँ नन्दलाल को आती है॥"

वे यही चाहते हैं--इसका आगे प्रचार कुछ होजाए।
इस ढंग से कालियदह के भी–जय का सुधार कुछ होजाए॥
मैं देख रहा हूँ–जल में वे विष को रस रूप बनाते हैं।
होने वाला है खत्म खेल, अत्यन्त शीघ्र अब आते हैं॥'

"कहाँ कहाँ ? आ रहे हैं ? है सब झूठी बात।"
यह कह गिरी धड़ाम से—वहीं यशोदा मात॥

जितने क्षण उधर बीतते हैं आने में कुँवर कन्हैया के।
बनते जाते हैं–छेद उतने छाती में बूढ़ी मैया के॥
"मुनिराय, न मुझको बहकाओ, मुझसे ही ऊब गया लाला।
कल माखन मैंने दिया नहीं इस कारण डूब गया लाला॥"
पागल की भाँति नन्द बोले–"अत्यन्त शीघ्र कब आयेंगे।
क्या महाप्रलय हो जायेगी तब अपना रूप दिखायेंगे ?
अब जान न इन हड्डियों में है अब नहीं है दम इन आँखों में।
उन आँखों में जब पानी है–गोपाल रहा जिन आँखों में॥
पानी में उधर रत्न है तो इस ओर भी शर तक पानी है !
अपनी क्या अब तो ब्रजभर की पानी में चिता बनानी है॥"

इतना कह, बूढ़ा गिरा जभी दुहत्तड़ मार।
नारद के भी बह चली–नयनों से जल धार॥
बहा रहा था इसतरह–आँसू गोपसमाज।
यमुना नदी डुबायगी–मानो ब्रज को आज॥